सत्याग्रह आश्रमका अितिहास

लेखक
मोहनदास करमचंद गांधी
अनुवादक
रामनारायण चौधरी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

अग्निसंभव

जब जब पू० बापूजी जेल जाते, तभी हम अुनसे कुछ न कुछ लिखनेकी माँग किया करते थे। अेक बार मैंने अुनसे अेक धार्मिक पाठमालाकी माँग की। अुसके बजाय पू० बापूजीने कोअी तेरह पाठोंकी बालपोथी तैयार कर दी। मगर अिसके पीछे जो कल्पना थी, अुसे समझाकर अुन्होंने कहा कि यह कल्पना मंजूर हो, तभी बालपोथी छपावाअी जाय।

बापूजीकी कल्पना अितनी ज़्यादा क्रान्तिकारी थी कि हम कोअी अुसे मंजूर न कर सके और यह बालपोथी अभी तक बग़ैर छपी ही रही है।

और अेकबार अुनसे मैंने कहा — "आपने 'आत्मकथा' लिखी है। 'दक्षिण अफ्रीकाका अितिहास' भी लिखा है। अब हमें सत्याग्रह आश्रमका अितिहास दीजिये। आप कअी बार कहते हैं कि सफ़र करते करते जब श्रद्धाका संबल ख़त्म हो जाता है, तब आप फिरसे नअी प्रेरणा लेनेके लिअे आश्रममें आते हैं। हममें तो अैसी कोअी बात नहीं है कि हम आश्रमवासियोंसे आपको कुछ खुराक मिले। अुलटे, हम अपने छोटेपनके कारण आपको अक्सर परेशान करते हैं, और आपके आश्रम आनेकी राह देखते हैं। आश्रमका आदर्श और अिस प्रयोगके पीछे रहनेवाली श्रद्धा आपको सचमुच नयी नयी प्रेरणा देती होगी। अिसलिअे यह सब हमें तफ़सीलवार लिखकर दीजिये। आश्रमको चलाते हुअे हमारे कारण आपको जो तकलीफ़ होती है, हमारे दोषोंके सबबसे आश्रमके विकासमें जो रुकावट आती है, वह सब

बिना संकोचके आप लिखियेगा। हमपर दया न करें। सत्याग्रह आश्रम वर्तमान भारतका अेक अद्‌भुत् धार्मिक-सामाजिक प्रयोग है। यह राजनीति और अर्थनीति दोनोंमें क्रान्ति करनेवाला है। अिसका सच्चा और मुफ़स्सिल बयान दुनियाके सामने आना ही चाहिये। आप ही ने तो 'आत्मकथा' में लिखा है कि, 'भले ही मेरे जैसे कअी फ़ना हो जायँ, मगर सत्यकी जीत हो। अल्पात्माको नापनेके लिअे सत्यका गज कभी छोटा न बने।' यही न्याय हमपर लागू करके आश्रमका अितिहास आनेवाली सन्तानोंके लिअे लिख दीजिये।"

अुन्होंने जो जवाब दिया, अुसका सार था :

"हो सका तो जरूर लिखूँगा। मगर सच पूछा जाय तो यह काम आप सबका है। यह प्रयोग आप लोगोंके जरिये हो रहा है। आपको ही अिसका अितिहास लिखना चाहिये।"

जब वे जेलसे बाहर आये, तब टुकड़े टुकड़े लिखा हुआ और बिलकुल अधूरा अितिहास लेकर आये। अुनका लिखना अेकसा नहीं था। अुन्होंने कहा—"यह काम पूरा नहीं कर सका। दुबारा जाँच लेनेकी जरुरत तो है ही। यह भी नहीं जानता कि अधूरा लिखा हुआ पूरा कर सकूँगा या नहीं। जैसा है वैसा छापने लायक़ हालतमें नहीं है। सुधार करनेके बाद ही दूँगा।" मैने कहा—"भले ही, मगर जो अभी है, अुसकी नक़ल करा लूँगा।"

मैंने हाथका लिखा तुरन्त ही ले लिया। और श्री मगनभाअी देसाअीसे अुसकी तीन चार नक़लें करा लीं। अेक नक़ल पूनेमें प्रो॰ जयशंकरभाअी त्रिवेदीके पास रख दी। दूसरी श्री मगनभाअीने विद्यापीठमें रख ली। तीसरी मैंने 'नवजीवन' को दी होगी। यह तलाश करना है कि मूल रचना अब कहाँ है, किसके पास है? अिस रचनापर अुनका हाथ फिरे सो बात तो

अब रही नहीं। पूरी तो हो ही कहाँसे! अिसलिअे अुसे जैसी है वैसी ही अेक बार जनताके सामने रख देनेका निश्चय किया गया है।

आश्रमकी प्रवृत्तियाँ कैसे बढ़ती गयीं, अिसका अच्छा खासा अितिहास अिन प्रकरणोंमें मिलता है। आश्रमकी प्रार्थना, हमारा सम्मिलित रसोअीघर, पाखानेकी सफ़ाअी, खादीका काम, खेती, गोशाला, रातको आनेवाले चोर और अुनके लिअे पहरा, आश्रममें होनेवाली शादी-ग़मी वग़ैरा अनेक प्रकरण जितने दिलचस्प हैं, अुतने ही हिन्दुस्तानके नवनिर्माणके ख़यालसे महत्त्वके हैं।

सन् १९१५ में सत्याग्रह आश्रमकी स्थापना करनेसे पहले गांधीजीने आश्रमकी कल्पना लिख डाली और अुसके दो तीन नाम सुझाकर अेक गश्ती चिट्ठी हिन्दुस्तानके कअी विचारकों, सेवकों और नेताओंके नाम भेज दी थी। अुसके साथ आश्रमके व्रतोंका विवेचन भी भेजा था। अिन ग्यारह व्रतोंमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह — ये पाँच व्रत योगमार्गमें यमोंके नामसे पुकारे जाते हैं। वैदिक ही नहीं, बौद्ध, जैन वग़ैरा सभी परम्पराओंमें अिन यमोंका महत्त्व बताया गया है। राजनीतिक स्वराज्य लेनेके लिअे और सामाजिक सुधारके ज़रिये कअी धर्मोंवाली भारतीय जनताके अुद्धारके लिअे चलाये जानेवाले आश्रममें यमोंका यह सुधरा हुआ संस्करण फिरसे प्रगट हुआ देखकर पुराने और नये सभी विचारके लोगोंको आश्रमके बारेमें कुतूहल और आदरकी भावना पैदा हुअी।

आश्रमके अिन व्रतोंका विवेचन या भाष्य गांधीजीने सन् १९३० में यरवड़ा जेलसे हर मंगलवारको सुबह लिख लिखकर भेजा था। यह 'मंगल प्रभात' के नामसे मशहूर है।

मगर यह सारा विवेचन तात्विक था। अिन व्रतोंके पालनमें आनेवाली मुश्किलें और अुनसे विकास पानेवाली विचाधारा आश्रमके अिस अितिहासमें ही मिल सकती है। सत्यका व्रत पालने और पलवानेमें आनेवाली कठिनाअियोंके कारण जो सवाल पैदा हुअे, अुनका हाल अिस अितिहासके 'प्रायश्चित्त' और 'अुपवास'— अिन दो प्रकरणोंमें जितना विस्तारसे आया है, अुतना गांधीजीकी रचनाओंमें और कहीं नहीं आया।

अछूतपन मिटानेके लिअे आत्मशुद्धिका वातावरण जमानेमें गांधीजीको आश्रममें ही कितनी मुश्किल हुअी, अुसका जो दर्दभरा और अूँचे दर्जेका चित्र 'आत्मकथा' में है, अुससे कहीं ज्यादा अच्छे ढंगसे यहाँ आया है। यह सारा प्रकरण निहायत संयमके साथ लिखा हुआ होनेसे अिसकी तेजस्विता हमारा ध्यान ज़्यादा खींचती है।

स्वदेशी व्रतका विकास कैसे होता गया, अिसका छोटासा अितिहास यहीं सिलसिलेवार मिलता है।

आश्रमकी स्थापनाके साथ, आश्रमके अन्दर ही, मगर अेक स्वतंत्र संस्थाके तौरपर, बापूजीने शिक्षाका अेक प्रयोग किया। अिस प्रयोगके करनेवालोंने आश्रमका वातावरण अपनाया था। मगर आश्रमके व्रत और नियम कड़ाअीके साथ पालना अुनके लिअे लाज़िमी नहीं था। अेक ही वातावरणवाली और अेक ही बापूजीकी प्रेरणासे चलनेवाली दो संस्थाओंका जीवन अलग हो नहीं सकता था और अेक दूसरेको निबाह लेनेकी कलाका हम विकास नहीं कर सके थे। नतीजा यह हुआ कि हम दोनों तरफ़वालोंने पू० बापूजीको जितना क्लेश पहुँचाया, अुतना शायद ही और किसीने पहुँचाया होगा। अुद्धव और अक्रूरके झगड़ेसे जो हालत

श्रीकृष्णकी हुअी और जो अुन्होंने खुद नारदके सामने बयान की है, वही हालत पू० बापूजीकी हुअी थी। अुसका अिशारा भी अिस अितिहासमें मिलता है। और अुसीके साथ शिक्षाके बारेमें अुनके जो विचार सन् १९३२ में बने थे, वे भी अुन्होंने यहाँ दिये हैं। अिन विचारोंमें बुनियादी तालीमका प्रारम्भिक स्वरूप हमें देखनेको मिलता है। यह अेक बड़ा लाभ है।

मुझे कहना चाहिये कि ये सारे विचार पाठशालाके शिक्षकोंको पूरी तरह मंजूर थे। अिस बारेमें ज़रूर मतभेद था कि कुछ सिद्धान्तोंपर कितना जोर दिया जाय और दो तीन तत्त्वोंमें समन्वय कैसे किया जाय। मगर खास मुश्किल, दोनों संस्थाओंको चलाते हुअे व्यवस्थाके सिलसिलेमें थी। अुस वक़्तके अिस शिक्षा सम्बन्धी या, जैसा पू० बापूजी कहा करते थे, आध्यात्मिक झगड़ेसे ही वर्धा-योजनाका स्वरूप तय हुआ और बापूजी अिस फ़ैसलेपर पहुँचे कि राष्ट्रीय महत्त्वके ग्राम-अुद्योगोंके विकासका काम शिक्षाकारके हाथोंमें सौंपना चाहिये और वह शिक्षाके तौरपर होना चाहिये।

सत्याग्रह आश्रमके अलौकिक प्रतिभाशाली संस्थापकके हाथों लिखा हुआ यह अितिहास थोड़ासा शुरू होकर रुक गया, यह दुःखकी बात है। सत्याग्रह आश्रम समेटकर, साबरमती छोड़कर, वे जब वर्धा रहने आये, तब हम दो तीन आश्रमवासियोंको अुन्होंने कहा था कि सत्याग्रह आश्रममें हमने जिस सामुहिक आध्यात्मिक जीवनका विकास किया था, अुसके सिलसिलेमें समय समयपर बनाये, बदले और सुधारे हुअे नियमोंका संग्रह कीजिये और तफ़सीलवार लिख डालिये। यह आश्रमकी यादगारके रूपमें काम आयेगा। अिसके लिअे मैंने कोअी पचास शीर्षक तैयार करके बापूजीको बताये थे। अुन्होंने कहा कि अिसमें सब कुछ आ जायगा। लेकिन

मैं अभी तक प्रार्थनाके अेक प्रकरणके सिवा ज़्यादा न लिख सका। औरोंने भी अिस दिशामें अभी तक कोअी शुरूआत नहीं की। श्री जुगतराम भाअीने 'आत्मरचना या आश्रमी शिक्षा' के नामसे अेक विस्तृत पुस्तक लिखी है, मगर अुसका अुद्देश्य दूसरा है।

आश्रमके कामसे मुक्त करके बापूजीने जब मुझे गूजरात विद्यापीठ चलानेके लिअे वहाँ भेजा, तबसे (सन् १९२७) आश्रमकी प्रवृत्तियोंसे मेरा सम्बन्ध कम हो गया। फिर तो यह कल्पना करके कि सुबह-शामकी प्रार्थना और साबरमतीके किनारेकी अुसकी जगह ही सत्याग्रह आश्रम है, आश्रमकी तमाम प्रवृत्तियोंको अुद्योग-मन्दिरका नाम दे दिया गया। और सन् १९३३ की लड़ाअीके अन्तमें किसानोंको परेशान करनेवाली सरकारी नीतिके विरोधमें बापूजीने आश्रमका सदाके लिअे विसर्जन कर दिया, और अिस वीरान आश्रमपर सरकारको क़ब्ज़ा करते न देखकर, अठारह साल तक चले हुअे आश्रमकी तमाम स्थावर सम्पत्ति हरिजनसेवाके काममें अर्पण कर दी। आज अिस आश्रमकी भूमिपर हरिजन लड़कियोंका अेक छात्रालय चल रहा है और हरिजन लड़कोंको अच्छीसे अच्छी बुनियादी तालीम दी जा रही है।

सत्याग्रह आश्रमके विसर्जनके बाद स्व० जमनालालजीकी प्रेरणासे स्थापित गांधी सेवासंघका ख़ास तौरपर विकास हुआ। अिस संस्थाका अुद्देश्य गांधीजीके सिद्धान्तोंको माननेवाले हिन्दुस्तान भरके तमाम सेवकोंके कामकाजका संगठन करना और अुन्हें ज़रूरी मदद पहुँचाना था। यह काम पाँच सात साल तक ज़ोरशोरसे चला। कअी राजनीतिक और भीतरी कारणोंसे सन् १९४० के शुरूमें अिस संघका विसर्जन करना पड़ा।

हिन्दुस्तानके आज़ाद होनेके बाद और अुसके साथ ही हिन्दुस्तानके टुकड़े हो जानेके बाद देशकी सारी स्थिति बदल गयी है। गांधीजीके अुसूल और अुनके चलाये हुअे रचनात्मक काम दोनोंको हिन्द सरकारने अेक हद तक अपनाया है और अिन्हीं अुसूलों और जीवनक्रमको अपने जीवनमें थोड़ा बहुत अपनानेवाले लोगोंकी बड़ी संख्या सारे देशमें फैली हुअी है। सत्याग्रह आश्रम या गांधी सेवासंघसे वह बहुत विशाल हो गयी है। अब अुसे रास्ता बतानेके लिअे पू० बापूजी नहीं हैं, अिसलिअे अिन लोगोंने हाल ही में सेवाग्राममें जमा होकर अेक अहिंसा-परायण सर्वोदय समाज कायम किया है। बापूजीके तमाम रचनात्मक कामोंका भी अेक सर्वसेवा-संघ जैसे ही किसी नामका अेक सार्वभौम संगठन तैयार हो रहा है। अिस तरह, दक्षिण अफ्रीकामें क़ायम हुअे छोटेसे फ़िनिक्स आश्रमका धीरे धीरे विकास होता जा रहा है। सर्वोदय समाजका अभी तो हिन्दुस्तानमें ही विकास दिखाअी देगा। मगर यह माननेका कारण नहीं है कि अिसका विकास यहीं रुक जायगा।

पू० गांधीजीकी आश्रमजीवनकी कल्पना अेक युगप्रवृत्ति है। जब तक मूल कल्पना सिद्ध नहीं होती तब तक अैसी युगप्रवृत्तिका विस्तार बढ़ता ही जायगा। विशाल जीवनव्यापी अेक सार्वभौम कल्पनाके पूरे होनेके लिअे अेक कल्प लग जाय, तो अिसमें कुछ भी अनोखी बात नहीं।

फ़िनिक्स पश्चिमी देशोंके पुराणोंमें बयान किया हुआ अेक काल्पनिक पक्षी है। अिसकी अुत्पति मामूली पक्षियोंकी तरह अंडेसे नहीं होती। फ़िनिक्स अपनी पैदा की हुअी आगमें खुद जल मरता है, और अुसकी अिस चिता-भस्ममेंसे नया

फ़िनिक्स जन्म लेता है। दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजीके कायम किये हुअे 'फ़िनिक्स सेटलमेण्ट'के बाद साबरमतीके किनारे क़ायम हुआ सत्याग्रह आश्रम, अुसके विसर्जनके साथ विकास पानेवाला गांधी सेवासंघ, अुसके बिखरनेके बाद और पू० बापूजीके बलिदानके बाद हिन्दकी आज़ादीके साथ जन्म लेनेवाला सर्वोदय समाज: यह परम्परा भी अिस पौराणिक पक्षीके अग्निसंभव जैसी ही है। अिस हर अेक जन्मका अलग अलग सविस्तर अितिहास हमें मिलना ही चाहिये।

(२)

मौजूदा जमानेमें जब शारीरिक रोगोंकी तरह ही मानसिक रोग भी बढ़ गये हैं, तब अुनका अिलाज करनेवाले दोनों तरहके समर्थ डॉक्टर भी तैयार हो गये हैं। मानसिक रोगोंका अध्ययन और पृथक्करण करके अुनके अिलाज आज़मानेवाले डॉक्टर कहते हैं कि मनुष्यजातिका मौजूदा मानस बहुत ही पेचीदा होता जा रहा है; अुसकी पेचीदगियाँ घटनेके बजाय बढ़ती ही जा रही हैं। वे अब यह भी कहने लगे हैं कि अिस जटिलताको दूर करके मनुष्यके मनको नीरोगी और मज़बूत बनानेकी शक्ति सिर्फ़ धर्ममें ही है। अिसलिअे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा फिरसे स्थापित करनी चाहिये।

दूसरी तरफ़, अितिहासका गहरा अध्ययन करनेवाले और अपने अपने देशोंको रास्ता बतानेवाले आजकलके नेता कहते हैं कि अिन्सानके मनको संकुचित करनेवाला और अुलटे रास्ते ले जाकर पागल बनानेवाला यदि कोअी भयंकर तत्व है तो वह धर्म ही है और धर्मके नामपर किये गये अत्याचारोंके लिअे मनुष्यको

पछतावा भी नहीं होता। अिसलिअे मनुष्य जातिको बचाना हो, तो धर्मका काँटा निकालनेमें ही ख़ैर है!

रूसी क्रान्तिके प्रणेताओंने अितिहासका गहरा अध्ययन करके धर्मके बारेमें तीसरी ही राय बतायी है। वे कहते हैं कि मनुष्यकी विचार शक्तिको बाँझ बनाकर अुसे चाहे जैसी हीन दशामें भी सन्तोष माननेकी शिक्षा देनेवाला धर्म अफ़ीमसे भी खराब चीज़ है। अफ़ीमका शिकार किसी वक़्त बुद्धिकी जाग्रति बता सकता है, मगर धर्मका शिकार तो अपने पामर जीवनके लिअे अेक फिलसुफी बना लेता है और अुसीमें खुश रहता है। अिसलिअे मनुष्य जातिकी स्वतंत्रता और अुसका गौरव क़ायम रखना हो तो धर्ममात्रका सफ़ाया कर देना चाहिये।

हरअेक आदमी धर्मका अर्थ अलग अलग करता है। सच पूछा जाय तो धर्ममें घुसकर अेक धर्मको अनेक बनानेवाली रूढ़ियाँ, मान्यतायें, विधियाँ और वहम मनुष्य जातिको छिन्न भिन्न और जड़-मूढ़ बनाती हैं। अैसे 'धर्म' का अभिमान करके मनुष्य भयंकर बनता है। लेकिन अिन धर्मोको अनुप्राणित करनेवाला परम मंगलमय जो प्रधान धर्मतत्त्व है—जिसे अिस किताबमें गांधीजीने परम धर्म कहा है—अुसके अभावमें आज दुनिया अँधेरेमें तड़प रही है। अिस परमधर्म तत्त्वको ख़ानगी जीवनकी तरह सामाजिक सम्बन्धोंमें भी दाखिल करनेकी गरज़से गांधीजीने आश्रमकी स्थापना की थी। हिन्दुस्तानके राजनीतिक लोगोंको गांधीजीकी स्वराज्य साधना तो आकर्षित कर सकी, लेकिन अुनके क़ायम किये हुअे आश्रमका धर्मजीवन पुराने ज़मानेके अेक फ़ालतू अंग जैसा मालूम हुआ। भले भलोंने समय समयपर अुसकी निन्दा कर डाली। अब जब कि अधिकारकी भूखसे प्रेरित हुअे लोगोंमें स्वराज्य मिलते ही

या अुसके पहले ही छीना झपटी होती दिखाअी दी, तब लोगोंको लगता है कि राजनीतिक स्पर्धासे दूर रहनेवाले, रचनात्मक कार्यक्रममें लगे रहनेवाले, और देशमें दंगा-फ़साद होनेपर शान्ति-सेनाका काम देनेवाले समूहकी हमारे पास सुविधा होती तो अच्छा होता।

अेक तरफ़से देखते हैं तो आश्रममें रहनेवाले लोग गांधीजीके आदर्श तक अूपर न अुठ सके। और दूसरी तरफ़, राष्ट्रकी तेजस्विता और नैतिक पूँजीको बढ़ानेवाले अिस प्रयोगका रहस्य बाहरके लोग पहचान न सके और गांधीजीकी यह कोशिश पूरी आज़माअिशके बग़ैर ही रुक गयी!

और फिर भी अठारह सालके अिस प्रयोगसे आजके ज़मानेके लिअे सीखनेको बहुत कुछ मिल सकता है।

जिस मनुष्य जातिकी बुद्धिका लगातार दो युद्धोंके कारण दिवाला निकल चुका है, वह तीसरे महायुद्धके ख़यालसे काँप रही है। मगर वह युद्धको टालनेके बजाय अुसे बुलावा ही देती जा रही है। अिस युद्धसे बचनेके लिअे हम अहिंसक समाजकी स्थापना करनेका संकल्प कर चुके हैं, मगर हमें रास्ता नहीं मिल रहा है। अैसे समयपर पन्द्रह सालके आश्रम-जीवनके अनुभवके बाद गांधीजीका लिखा हुआ आश्रमका यह अितिहास हमारे लिअे कअी तरहसे प्रेरक साबित हो सकता है। गांधीजीने जैसे नियम बनाये और जैसे तजुर्बे किये, हूबहू वैसे ही फिरसे करने चाहियें, अैसा तो कोअी नहीं कहेगा। लेकिन सत्य और अहिंसाकी बुनियादपर समाजकी रचना करनी हो, तो संयम, अपरिग्रह और तपस्याकी साधनाको अपनाये बग़ैर ख़ैर नहीं। सिर्फ़ अहिंसाकी दुहाअी देनेसे काम नहीं चलेगा। अहिंसाको सिद्ध करनेके लिअे संयम और अपरिग्रहका

विकास करना ही चाहिये। अिसके बगैर शुद्ध और निःस्वार्थ सेवा हो ही नहीं सकती।

हिंसाको माननेवाले समाजकी युद्ध-सेना शान्तिके दिनोंमें जिस क़िस्मकी पहलेसे तैयारी करती है, वैसी तैयारी अहिंसक समाजकी शान्ति-सेनाको पहलेसे नहीं करनी पड़ती। लेकिन अपने परायेका ख़याल छोड़कर तमाम जनताकी जीवन-व्यापी सेवा दिन रात और बारहों महीने करते रहनेसे ही दंगोंमें लगी हुअी जनताको क़ाबूमें लानेकी शक्ति अिस सेनामें आ सकती है। हिंसक सेना जब विरोधी पक्षसे ख़ूब द्वेष करती हो, तभी पूरी बहादुरीसे लड़ सकती है। स्टालिनग्रेड जीतनेसे पहले रूसी सर्वाधिकारी स्टैलिनने अपनी फ़ौजके जवानोंसे ज़ोर देकर कहा था कि जर्मन लोगोंसे दिलोजानसे द्वेष करना न सीखोगे, तो तुम जीत नहीं सकोगे। अहिंसक सेनाकी बात अिससे ठीक अुलटी है। जो हमारे घरबार जला चुके हैं, हमारे स्त्री-बच्चोंको अुड़ा ले जा रहे हैं, अुन लोगोंका भी बुरा न चाहनेवाले सैनिक ही अहिंसक प्रतिकारमें विजय प्राप्त कर सकते हैं। अिसके लिअे अपनेपर भरोसा होना चाहिये कि जैसे द्वेष पैदा किया जा सकता है वैसे ही अुपेक्षा और करुणासे शुरू करके मैत्री और मुदिता तककी 'आर्य भावनाअें' भी पैदा की जा सकती हैं। कठोर जीवन तो दोनोंमें ही चाहिये, मगर अहिंसक सेनामें जीवन-शुद्धिकी विशेषता ज़रूरी है। (शिवाजी, क्रॉमवेल, किचनर और हिटलर तक हिंसक युद्धके सेनापति भी मानते आये हैं कि हथियारोंकी लड़ाअीमें भी जीवन-शुद्धिसे बड़ी मदद मिलती है। अिस्लामके पैग़म्बर मोहम्मद साहबने अपनी फ़ौजसे लड़ाअीके पहले दिन अुपवास और प्रार्थना कराअी थी।)

अगर सचमुच अहिंसक समाजकी स्थापना करनी हो, तो शान्ति-सेनाका संगठन किये बिना काम नहीं चलेगा; और अगर शान्ति-सेनाका दरअसल संगठन करना है, तो जैसा अिस किताबमें गांधीजी कहते हैं अुस तरहसे तप और संयम साधे बिना काम नहीं चल सकता। "जहाँ समाजकी रचना अहिंसापर होती है, वहाँ गोला बारूदकी जगह तप और संयम लेते हैं। और अुन्हें काममें लेनेवाले सिपाही समाजकी रक्षा करते हैं। दुनियाने अभी तक अैसा धर्म अपनाया नहीं है। हिन्दुस्तानमें थोड़ा-बहुत अपनाया गया है, मगर व्यापक रूपमें अपनाया नहीं कहा जा सकता। अैसी अहिंसा व्यापक होनी चाहिये और हो सकती है। आश्रममें यह मान्यता रही है कि अुस पर समाजकी रचना हो सकती है और अिस मान्यताके आधार पर प्रयोग हो रहे हैं। अैसा कहा जायगा कि सफलता अभी तक तो थोड़ी ही मिली है।"

धर्मकी शाब्दिक चर्चा बारीकीसे करनेवालोंका सिलसिला हमारे देशमें अभी तक टूटा नहीं है। मगर प्रयोग करके अेक अेक सिद्धान्तको आज़माकर आगे बढ़ानेवाले गिनतीके ही लोग हैं। यह अेक तरहसे अच्छा ही था कि गांधीजीका शास्त्रग्रन्थोंका ज्ञान नहींके बराबर था; क्योंकि सुनी हुअी सभी बातें अुन्होंने शुरूमें मामूली श्रद्धासे और आस्तिक बुद्धिसे मान ली थीं, बादमें अुन्होंने अपना सारा जीवन अुंडेलकर अिन सब बातोंकी जाँच कर ली। अनुभवके अख़ीरमें जो बातें छोड़ने लायक़ मालूम हुअीं, अुन्हें हिम्मतके साथ निकाल देनेके लिअे अुन्होंने कमर कस ली और जो अिष्ट और कल्याणकारी जान पड़ीं, अुनके बारेमें अपना अनुभव और आग्रह दुनियाके सामने रखकर लोगोंको भी वैसा करनेके लिअे

तैयार किया और अिस तरह पुरानेमें जितना जीवित था अुसकी रक्षा करके अुसे नया रूप दिया और धर्मको ज़िन्दा बनाया ।

अब अगर अहिंसाके मार्गसे सीधी सादी कोशिशके बल मिली हुअी आज़ादी खो न बैठना हो, बल्कि अिस आज़ादीकी जड़ें मज़बूत करके दुनियाकी सेवा करनेकी ताक़त अपने देशमें लानी हो, तो गांधीजीका आश्रम-प्रवृत्तिका प्रयोग सारे देशको फिरसे हाथमें लेना चाहिये। अैसे आश्रम ग्राम अुद्योगोंसे तो गूँजते ही होने चाहियें, अिससे भी ज़्यादा शिक्षाके वातावरणसे सुगंधित होने चाहियें।

अिस पुस्तकको भूतकालके अेक बोधप्रद प्रयोगके बयानकी हैसियतसे नहीं देखना चाहिये । मगर राष्ट्रपिताके द्वारा आनेवाले पाँच सौ वर्षोंकी राष्ट्रीय साधनाके लिअे किये गये अेक स्फूर्तिदायक प्रयोगके रूपमें अुसका अध्ययन करके अुसमेंसे संकल्पबल प्राप्त करनेके लिअे अिस अितिहासका अध्ययन होना चाहिये । सन् १९३३ में जो प्रयोग टूट गया था, वह कअी रूपोंमें, जगह जगह सारे देशमें फिरसे शुरू होना चाहिये । तभी हिन्दुस्तानका भी नया अग्निसंभव होगा।

काका कालेलकर

विषय-सूची

सत्याग्रह आश्रमका अितिहास

आश्रमका अर्थ यहाँ सामुदायिक धार्मिक जीवन है। आजकी दृष्टिसे पिछली बातोंको देखते हुअे मुझे अैसा लगता है कि अिस तरहका आश्रम मेरे स्वभावमें ही था।

५–४–'३२

जबसे मैंने अलग घर बसाया, तभीसे मेरा घर अूपरकी व्याख्याकी दो शर्तोंके मुवाफिक आश्रम-जैसा बन गया था। क्योंकि यह कहा जा सकता है कि गृहस्थाश्रम भोगके लिअे नहीं, बल्कि धर्मके लिअे बना है। फिर अुसमें कुटुम्बियोंके सिवा कोअी न कोअी मित्र तो होता ही था। और वह या तो धार्मिक सम्बन्धके कारण आया होता था, या अुसके आनेके बाद अुस सम्बन्धको मैं धार्मिक बनानेकी कोशिश करता था। अिस तरह सन् १९०४ तक अनजाने ही चलता रहा। १९०४ में मैंने रस्किनका 'सर्वोदय'[1] पढ़ा और अुसका असर बिजलीका-सा हुआ। 'अिण्डियन ओपिनियन'का कारखाना जंगलमें ले जाकर वहाँ मजदूरोंके साथ अिकट्ठा या कुटुम्बका-सा जीवन बितानेका मैंने निश्चय किया। सौ बीघा जमीन लेकर आश्रम बसाया। अुस वक्त हमारी अिस संस्थाको मैंने भीतर या बाहर आश्रमके रूपमें पहचानना नहीं सीखा था। धर्म अिसका अंग जरूर था, लेकिन जाहिरा मक़सद भीतरी और बाहरी सफ़ाअी और आर्थिक बराबरी वगैरा हासिल करना था। अिस वक्त ब्रह्मचर्यकी जरूरत न मानी गअी थी, न समझी ही। अितना ही नहीं बल्कि अिसके

विपरीत यह मान्यता रही थी कि सब साथी गृहस्थीका जीवन बितायेंगे और प्रजाकी वृद्धि होगी। फ़िनिक्स[2]का थोड़ासा अितिहास 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका अितिहास'में आ जाता है।

अिसे हम पहला कदम समझें।

यह कहा जा सकता है कि दूसरा कदम सन् १९०६में अुठाया गया। अैसा कह सकते हैं कि सेवाका जीवन बितानेके लिअे ब्रह्मचर्यकी जरूरत अनुभवसे साबित हुअी। और तबसे फिनिक्सको मैं जानबूझकर धार्मिक संस्थाके रूपमें मानने लगा और मेरे मनमें अुसका धार्मिक ढाँचा बनने लगा। राजनीतिक सत्याग्रहकी शुरूआत अिसी सालमें हुअी। अुसकी जड़में तो धर्म ही था। अुसका आधार सत्यरूप परमात्मापर अविचल श्रद्धा थी। यहाँ धर्मका कोअी संकीर्ण अर्थ न लिया जाय। 'धर्म'का अर्थ है अलग अलग नामोंसे पहचाने जानेवाले सब धर्मोंका अेक साथ संकलन करनेवाला और अुन्हें अेकरूप देखनेवाला परम धर्म।

१९११ तक अिस तरह चलता रहा। अितने बरसोंमें फिनिक्स संस्थाकी, अुसे आश्रमके रूपमें जाने बिना, आश्रमके तौरपर प्रगति हो रही थी, अैसा मैं मानता हूँ।

१९११ में तीसरा क़दम अुठाया गया। आज तक फिनिक्समें जो लोग स्थायी रूपसे रह सकते थे, वे वही थे जो छापाखानेके काममें आ सकते थे। मगर अब सत्याग्रहके कामके लिअे अेक अैसे आश्रमकी जरूरत जान पड़ी, जहाँ सत्याग्रही कुटुम्ब रह सकें, धार्मिक जीवन बिता सकें। अिस वक्त मैं जर्मन मित्र कॅलनबॅक[3]के संपर्कमें आ चुका था। हम दोनों अेक तरहका आश्रम जीवन बिताते थे। मैं वकालत

करता था और कॅलनबॅक अपना स्थापत्यका धन्धा करते थे। फिर भी हम अेक दूर और बिखरी हुअी बस्तीमें अैसा जीवन बिताते थे जिसे मात्रामें बहुत सादा कहा जा सकता था, और यथाशक्ति हमारा मन धर्ममें लगा रहता था। अनजानमें भूलें बहुत हुअी होंगी, मगर हम हर कामकी जड़ धर्ममें ढूँढनेकी कोशिश करते थे। बादमें जब सत्याग्रही कुटुम्बोंकी भीड़ हुअी, तब सबको अेक साथ रखनेकी जरूरत जान पड़ी। अिसलिअे कॅलनबॅकने ग्यारह सौ बीघा चौरस जमीन ली और वहाँ सत्याग्रही कुटुम्ब बसे। यहाँ पग पगपर धार्मिक सवाल खड़े हुअे और सारी संस्था धार्मिक दृष्टिसे चली। अिसमें हिन्दू, मुसलमान, अीसाअी और पारसी रहते थे। अिस कारणसे किसी भी दिन क्लेश या झगड़ा हुआ हो, अैसा मुझे बिलकुल याद नहीं। अिसी तरह यह बात भी न थी कि वहाँ रहनेवाले अपने धर्मके बारेमें ढीलेढाले थे। हममें अेक दूसरेके धर्मके प्रति आदर था और हम अेक दूसरेको अपने अपने धर्मके अनुसार चलने और आत्मविकास करनेकी प्रेरणा देते थे।

लेकिन अिस संस्थाको हम सत्याग्रह आश्रमके रूपमें नहीं पहचानते थे। अिसका नाम 'टॉल्स्टॉय फार्म' रखा था। कॅलनबॅक और मैं टॉल्स्टॉयके पुजारी थे, और अुनके बहुतसे विचारोंपर अमल करनेकी खूब कोशिश करते थे। सन् १९१२ में यह संस्था सत्याग्रही-निवासके बतौर बन्द हो गयी और जिन जिन लोगोंको साथ साथ रहना था, वे सब फ़िनिक्स चले गये। टॉल्स्टॉय फार्मका अितिहास भी जिन्हें जानना हो, वे 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका अितिहास' देख सकते हैं।

फ़िनिक्स अब सिर्फ़ 'अिण्डियन ओपिनियन'के सिलसिलेमें कायम हुअी संस्था न रही, बल्कि सत्याग्रहकी संस्था

६-४-'३२

बनने लगी। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि 'अिण्डियन ओपिनियन'की हस्ती के लिअे भी वही जिम्मेदार थी। परन्तु यह फेरबदल अैसा वैसा नहीं था। फ़िनिक्स वासियोंका जीवन डाँवाडोल बन गया और अिस डाँवाडोल हालतमें सत्याग्रहियोंकी तरह अुन्हें भी स्थिरता खोजनेकी नौबत आयी। अिससे वे हारे नहीं। यहाँ भी मैंने टॉल्स्टॉय फ़ार्मकी तरह मिलेजुले रसोअीघरकी जरूरत महसूस की। कुछ अुसमें शरीक हुअे, कुछ नहीं हुअे। शामकी सामाजिक प्रार्थनाको दिनदिन ज्यादा स्थान मिलता गया और सत्याग्रहकी आखिरी लड़ाअीकी शुरूआत फ़िनिक्सवासियोंके हाथों हुअी। यह घटना १९१३में हुअी। १९१४में लड़ाअी पूरी हुअी और मैंने जुलाअीके महीनेमें दक्षिण अफ्रीका छोड़ा। हिन्दुस्तान जानेकी जिन जिन लोगोंकी अिच्छा थी, लगभग अुन सभीका हिन्दुस्तान जाना तय हुआ। मुझे विलायत होकर गोखलेसे मिलकर जाना था। हिन्दुस्तानमें अलग संस्था कायम करके सबको साथ रखना था और दक्षिण अफ्रीकामें मैंने जिस सामाजिक जीवनकी शुरूआत की थी, अुसे जारी रखना था। अिसलिअे आश्रमके नामके बिना आश्रम कायम करनेका निश्चय करके मैं १९१४ के अन्तमें हिन्दुस्तान पहुँचा।

हिन्दुस्तानमें अेक बरस तक तो खूब घूमा; कितनी ही संस्थाअें देखीं और अुनसे बहुत कुछ सीखनेको मिला। कितनी ही जगहोंसे वहाँ आश्रम स्थापित करनेके निमंत्रण मिले और कअी तरहकी मदद देनेके वचन मिले। अन्तमें अहमदाबादमें आश्रम खोलनेका निश्चय किया। अिसे मैं चौथा और आखिरी कदम मानता हूँ।

यह आखिरी रहेगा या नहीं, यह तो भविष्यकी बात है। अिस संस्थाको क्या नाम दिया जाय, अुसके नियम क्या हों, अिस बारेमें मैंने मित्रोंके साथ अच्छी तरह चर्चा की, पत्रव्यवहार किया, नियमोंका मसविदा मित्रोंको भेजा और अन्तमें संस्थाका नाम 'सत्याग्रह आश्रम' रखा गया। अुद्देश्यको ध्यानमें रखनेसे अैसा लगता है कि यह नाम ठीक ही था। मेरा जीवन सत्यकी खोजमें अर्पण किया हुआ है। अुसीकी खोजके लिअे जीनेका और जरूरत हो तो मरनेका आग्रह है। अिस खोजमें जितने साथी मिलें, अुतनोंको साथ लेनेकी भी अिच्छा है।

२२ मअी १९१५ को कोचरबमें किरायेके मकानमें यह आश्रम खुला। अुसके खर्चका बन्दोबस्त करनेका जिम्मा अहमदाबादके कुछ नागरिकोंने लिया। जब आश्रम खुला, तब लगभग बीस आदमी थे और अुनमेंसे ज्यादातर दक्षिण अफ्रीकासे आये हुअे थे। अुस वक्त अधिकांश दक्षिणकी तरफके यानी तामिल या तेलगु बोलनेवाले हिन्दुस्तानी थे। अुन दिनों आश्रममें छोटेबड़े सभीके लिअे खास काम भाषाअें सीखनेका यानी संस्कृत, हिन्दी और तामिल पढ़नेका था। बच्चोंके लिअे दूसरी साधारण पढ़ाअी थी। हाथ बुनाअी मुख्य अुद्योग था और अुसीके साथ पढ़ाअीका काम होता था। नौकर न रखनेका आग्रह था। अिसलिअे खाना बनाने, सफाअी करने, पानी भरने वगैराका सारा काम आश्रमवासी ही करते थे। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह वगैरा व्रत सारे आश्रमवालोंके लिअे लाजिमी थे। जातपाँतका भेद बिलकुल नहीं रखा गया था। अछूतपनके लिअे आश्रममें बिलकुल गुँजायश नहीं थी। अितना ही नहीं, बल्कि हिन्दू जातिमेंसे अछूतपन दूर

७-४-'३२

करनेकी कोशिशको आश्रमके काममें महत्त्वका स्थान दिया गया था। और अछूतपनकी तरह ही हिन्दू जातिमेंसे स्त्रियोंके कितने ही बन्धन तोड़नेके बारेमें भी आश्रममें शुरूसे आग्रह रखा गया था। अिस-लिअे आश्रममें स्त्रियोंको पूरी आज़ादी रही है। साथ ही, हिन्दू, मुसलमान वगैरा अलग अलग धर्मके लोगोंमें जितना भाअीचारा आपसमें हो सकता है, अुतना ही आश्रममें भी रखनेका नियम हो गया।

लेकिन अेक चीजके लिअे मैं ही जिम्मेदार हूँ। और अिसके लिअे मैं पश्चिमका आभारी हूँ। ये हैं मेरे भोजन सम्बन्धी प्रयोग। अिन प्रयोगोंकी शुरूआत हुअी १८८८ में, जब मैं विलायत गया था। अपने प्रयोगोंमें मैं सदा अपने कुटुम्बियों और दूसरे साथियोंको घसीटता रहा हूँ। अिसकी जड़में तीन कारण मुख्य थे: (१) स्वादेन्द्रिय यानी जीभपर और अुसीके जरिये दूसरी अिन्द्रियोंपर क़ाबू करना; (२) सादीसे सादी और सस्तीसे सस्ती खूराक ढूँढ़ निकालना, ताकि अिस बारेमें गरीबोंके साथ होड़ की जा सके; (३) खुराकके साथ तन्दुरुस्तीका गहरा सम्बन्ध है, अिस विचारके आधारपर कौनसी खुराक पूरी तन्दुरुस्ती हासिल करनेके लिअे ठीक है, यह खोज निकालना।

कहनेका मतलब यह नहीं कि अिन तीन कारणोंकी वजहसे मैं खुराकके प्रयोग करनेके लिअे ललचाया। अगर मैं निरामिष भोजन करनेकी प्रतिज्ञा लेकर विलायत न गया होता, तो शायद खुराकके प्रयोग करनेकी बात मुझे सूझी ही न होती। लेकिन जब मुझे ये प्रयोग करने पड़े, तो ये तीन कारण मुझे बहुत गहरे पानीमें ले गये और मुझे कअी तरहके तजरबे करनेकी प्रेरणा हुअी। अिस तरह आश्रम भी मेरे खुराकके प्रयोगोंमें शामिल हुआ। मगर ये प्रयोग आश्रमके अंग नहीं हैं।

अिससे मालूम हो सकता है कि आश्रमने देश और समाज सम्बन्धी जिन जिन दोषोंको माना, अुन्हें आश्रमसे दूर करनेकी अिच्छा थी। अिनमें धार्मिक, आर्थिक या राजनीतिक सभी खराबियाँ शामिल हैं। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता गया और प्रसंग आता गया, वैसे वैसे नये नये काम शुरू होते गये। यह नहीं कहा जा सकता कि आज यह लिखाते वक्त भी मेरे मनमें जितने काम हैं, अुन सबको आश्रममें दाखिल किया जा सका है। शुरूसे ही अेक दो निश्चयोंके अनुसार आश्रमका कामकाज चला है: (१) चादर देखकर पैर पसारना, यानी आश्रमको सहज ही मित्रोंसे जितनी आर्थिक मदद मिलती रहे, अुसी पर गुजर करना; (२) किसी भी प्रवृत्तिके पीछे न दौड़ना; परन्तु जो योग्य काम अपने आप आ पड़े अुसे बिना संकोच और, जरूरत हो तो, हर. जोखम अुठाकर भी हाथमें लेना।

८-४-'३२

मैं मानता हूँ कि अिन दोनों निश्चयोंके पीछे सिर्फ धार्मिक वृत्ति है। धार्मिक वृत्तिका अर्थ है अीश्वरपर श्रद्धा, — अिसलिअे सब कुछ अुसके आधारपर और अुसकी प्रेरणासे करना। अिस तरह चलनेवाला आदमी अीश्वरके भेजे हुअे धन (साधनों) के जरिये अुसीका बताया हुआ काम करता है। अीश्वर खुद कुछ करता है, अैसा तो वह हमें देखने या जानने देता नहीं। वह मनुष्यको प्रेरणा देकर अुसीके जरिये अपना काम कराता है। और जब हमने खयाल भी न किया हो अैसी जगहसे मदद आ जाय या बिना माँगे ही हमें मित्रोंसे सहायता मिल जाय, तब तो मेरी श्रद्धा यह मानेगी कि वह अीश्वरकी तरफसे भेजी गयी है। और अिसी तरह जो काम आ पड़े और जिसे

हाथमें न लेनेमें डरपोकपन, आलस्य या अैसा ही कोअी दूषित कारण मालूम हो, अुस कामको मेरी श्रद्धा अीश्वरका भेजा हुआ ही मानेगी।

और जो बात रुपये-पैसे और कामके बारेमें सच है, वही साथियोंके बारेमें है। रुपया हो, काम भी आ जाय, परन्तु साथीरूपी साधन न हो, तो भी वह काम हाथमें नहीं लिया जा सकता। यह साधन भी सहज ही मिलना चाहिये। जहाँ यह कल्पना ही नहीं बल्कि विश्वास है, समर्पण बुद्धि है कि आश्रम अीश्वरका है, वहाँ अीश्वर जिस जिस कामकी खातिर आश्रमको साधन बनाना चाहता है, अुसके लिअे सारा सामान भी वही भेज देता है। पिछले सोलह सालसे ही नहीं, बल्कि जबसे फ़िनिक्सकी स्थापना हुअी तभीसे जाने अनजाने, थोड़े या बहुत प्रमाणमें, अिन्हीं नियमोंके अनुसार संस्था चलती रही है। जो नियम शुरूमें नरम थे, वे बादमें कड़े होते गये हैं, और मेरी रायमें अब भी होते जा रहे हैं।

थोड़े ही दिनोंमें आश्रमकी आबादी दुगुनी हो गयी। और कोचरबके बंगलेकी रचना तो आश्रमके अनुकूल हो ही नहीं सकती थी। बंगला तो बंगला ही ठहरा। अुसमें अेक धनिक परिवार पश्चिम और पूर्वके रहनसहनको मिलाकर रह सकता था। अैसी जगहमें स्त्री, पुरुष और बच्चे कुल मिलकर साठ आदमी, कअी प्रवृत्तियाँ चलाते हुअे और ब्रह्मचर्य वगैरा व्रतोंको पालते हुअे, मुश्किलसे ही रह सकते थे। लेकिन जो मकान मिला, अुसीमें गुजर करना था। फिर भी थोड़े ही समयमें कअी कारणोंसे वहाँ रहना लगभग असम्भव हो गया। अिसलिअे, मानो अीश्वरने हमें वहाँसे निकाल दिया हो, अिस तरह हमें अचानक नयी

जमीनकी तलाश करनी पड़ी और बंगला खाली करना पड़ा। अिन घटनाओंका वर्णन 'आत्मकथा'में आ जाता है,[४] यहाँ दुहराता नहीं हूँ। कोचरबमें अेक कमी पहलेसे मालूम होती थी। वह साबरमती आनेपर दूर हुअी। फलोंके पेड़, खेती और पशुओंके बिना आश्रम अधूरा ही कहा जा सकता है। साबरमतीमें खेती करने जितनी जमीन है, अिसलिअे वहाँ खेती तुरत शुरू हो सकी।

यहाँ तक आश्रमके अितिहासपर अेक नजर डाली। अब व्रतों और कामोंके बारेमें जो जो प्रयत्न हुअे, अुनमेंसे जो मुझे याद हैं अुनका जिक्र करनेका विचार है। मेरा रोजनामचा मेरे पास नहीं। और अुसमें भी आश्रमवासियोंके जीवनकी नाजुक घटनाओंका हमेशा अुल्लेख नहीं किया गया है। अिसलिअे सिर्फ याददाश्तपर भरोसा करके यह अितिहास लिखा जा रहा है। मेरे लिअे यह प्रयोग नया नहीं है। 'दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका अितिहास' अिस तरह लिखा गया, 'सत्यके प्रयोग' भी अिसी तरह लिखे गये। अिस अितिहासमें भी यह दोष पढ़नेवालेको ध्यानमें रखना चाहिये।

सत्य

जब जब आश्रममें झूठ बोला गया, तब तब अुसे महारोग समझकर दूर करनेके कड़े अुपाय किये गये। आश्रममें दोष करनेवालेको सजा देनेकी नीति बिलकुल नहीं रखी गयी, — यहाँ तक कि दोष करनेवालेको आश्रममेंसे अलग कर देनेमें भी संकोच रहता था। दोष न होने देनेके लिअे तीन अुपाय किये जाते थे और किये जाते हैं। पहला तो मुख्य कार्यकर्ताओंकी शुद्धि। अिसके पीछे यह मान्यता रही है कि अगर कार्यकर्तामें कहीं भी दोष न हो, तो आसपासका वायुमण्डल शुद्ध ही रहेगा। जैसे सूर्यके सामने अँधेरा नहीं टिकता, वैसे ही सत्यके सामने असत्य नहीं टिकता।

दूसरा अुपाय बुराअीको जाहिर करना था। कोअी असत्य आचरण करता पाया जाता, तो अुसे समाजके सामने प्रगट कर दिया जाता। अिस अुपायको विवेकके साथ काममें लाया जाय, तो अुसका नतीजा बहुत अच्छा होता है। अिसमें दो सावधानियाँ रखनेकी जरूरत रहती है। अेक तो भूल करनेवालेके खुले आम दोष मंजूर करनेमें ज़बरदस्तीकी गंध भी न होनी चाहिये। दूसरे, दोष जाहिर करनेका असर दोष करनेवाले पर अैसा न होना चाहिये कि फिर अुसे शर्म ही न महसूस हो। दोष प्रगट हुआ कि पाप धुल गया, अैसा खयाल पैदा हो जाय, तो फिर दोषमें रहनेवाली शर्म नहींके बराबर हो जाती है। जरासा असत्य भी महारोग है, अिस बातका भान सदा ही रहना चाहिये।

तीसरा अुपाय मुख्य कार्यकर्ताका और असत्य आचरण करनेवालेका प्रायश्चित्तके रूपमें अुपवास करना है। असत्य आचरण करनेवाला अुपवास करे या न करे, यह अुसकी अपनी अिच्छा पर है। मुख्य कार्यकर्ता तो जाने अनजाने अपनी संस्थामें होनेवाले दोषके लिअे जिम्मेदार है ही। असत्य जहरीली हवासे भी ज्यादा जहरीला और ज्यादा सूक्ष्म है। जहाँ मुखियाकी आध्यात्मिक दृष्टि है, जहाँ वह जाग्रत है, वहाँ यह सूक्ष्म जहर घुस नहीं सकता। अिसलिअे अगर वह घुसता नजर आये, तो वह मुखियाके लिअे चेतावनी रूप है। अुसे समझना चाहिये कि अिस जहरके घुसनेमें कहीं न कहीं अुसका अपना भी हाथ है। मेरा खयाल है कि जितना साफ असर भौतिक शास्त्रमें अमुक मिश्रणोंका या क्रियाओंका हम देखते हैं, अुतना ही बल्कि अुससे भी ज्यादा साफ असर रूहानी क्रियाओंका होता है। बात अितनी ही है कि हमारे पास अैसे नापनेके

२५-४-'३२

यंत्र नहीं हैं। अिसलिअे अैसे असरोंके बारेमें हमें जल्दी विश्वास नहीं होता, या होता है तो वह पक्का नहीं होता। फिर, बहुधा हम अपने साथ बहुत अुदारतासे काम लेते हैं। अिसका फल यह होता है कि हमारे प्रयोगोंमें कामयाबी नहीं होती और हम कोल्हूके बैलकी तरह अेक ही दायरेमें घूमा करते हैं। अिस तरह असत्यकी गाड़ी चलती रहती है और अन्तमें हम अैसे निर्णयपर आते हैं कि असत्य अनिवार्य है। जो अनिवार्य माना जाता है, वह सहज ही जरूरी हो जाता है। अिस तरह सत्यके बदले असत्यकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगती है।

अिसलिअे जब जब आश्रममें असत्य देखनेमें आया है, तब तब अुसमें मैंने अपना दोष तो स्वीकार किया ही है। यानी मैं अपनी व्याख्याके सत्य तक नहीं पहुँच पाया हूँ। भले ही अज्ञानसे ही सही, पर मैंने सत्यको पूरी तरह समझा नहीं और अिसलिअे सोचा नहीं, कहा नहीं; तो फिर आचरण कहाँसे करता? मगर अिस तरह दोष स्वीकार करनेके बाद क्या भाग जायँ, गुफामें जा बसें, या मौन ले लें? अिसे मैं कायरता मानता हूँ। गुफामें बैठकर सत्यकी खोज नहीं होती। जहाँ बोलना ज़रूरी हो वहाँ चुप कैसी? गुफाके लिअे खास हालातमें स्थान है। मगर मामूली अिन्सानकी कसौटी तो समाजमें ही हो सकती है।

तो फिर मैं असत्यको निकालनेके क्या अुपाय करूँ? यह सोचने पर मुझे देहदमनके सिवा दूसरा कोअी रास्ता नहीं सूझा। देहदमनका अर्थ है अुपवास वगैरा। देहदमनके तीन असर होते हैं: अेक अपनेपर, दूसरा असत्य आचरण करनेवालेपर और तीसरा समाजपर। देहदमनसे मनुष्य खुद ज्यादा सावधान होता है, दिलकी गहराअीमें अुतरकर आत्मनिरीक्षण करता है और अपनी कमजोरी

पहचान ले, तो अुसे दूर करनेके अुपाय करता है। असत्य आचरण करनेवालेमें दयाभाव हो, तो अुसे अपने दोषका भान होता है, वह खुद शर्माता है, और दुबारा दोष न करनेका निश्चय करता है। आसपासका समाज अपनी कमियों और ज्यादतियोंकी जाँच करने लग जाता है।

मगर देहदमन सिर्फ अेक साधन है, साध्य नहीं। अुसमें मनुष्यको सुधारनेकी शक्ति बिलकुल नहीं है। अुसके पीछे जो विचार रहता है, वह हो तभी अुससे लाभ अुठाया जा सकता है। वह विचार यह है: मनुष्य शरीरका दास होकर रहता है, शरीरके भोगके लिअे कअी धन्धोंमें पड़ता है, और अनेक पाप करता है। अिसलिअे जब जब पाप हो, तब तब देहको दण्ड दिया जाय। देहके भोगोंमें पड़े हुअे अिन्सान मूर्छामें होते हैं। भोजनरूपी भोगका थोड़ा बहुत त्याग भी मूर्छाको हलकी करनेमें मददगार हो सकता है। अुपवासके अिस असरको ध्यानमें रखते हुअे अुसकी व्याख्याको विस्तृत करनेकी जरूरत है। अुपवासका अर्थ है अपनी या दूसरेकी आत्माकी शुद्धिके लिअे किया हुआ सभी अिन्द्रियोंका दमन। अकेला भोजन छोड़ना अुपवास नहीं माना जाता, और बीमारीके अिलाजके लिअे किया हुआ आहारत्याग तो अुपवासमें गिना ही नहीं जा सकता।

मैंने यह भी अनुभव किया है कि चलते फिरते अुपवास हो, तो अुसका असर कम पड़ेगा। अिसका कारण यह मालूम होता है कि बार बार होनेवाले अुपवास यांत्रिक क्रिया-जैसे हो जाते हैं। अुनके पीछे वह विचार नहीं होता। अिसलिअे हर अुपवासके पीछे चारों तरफ जाग्रतिकी जरूरत रहती है।

मैंने खुद अपने लिअे अेक खास परिणाम भी अनुभव किया है। मैंने बहुत बार अुपवास किये हैं, अिससे साथी घबराये हुअे रहते हैं। अुन्हें यह डर रहता है कि अिनसे मेरा शरीर जोखममें पड़ता है। अिसलिअे साथियोंमें कितने ही अिस डरके मारे संयमनियम पालते दिखाअी देते हैं। मैं अिसे अुपवासका अुलटा नतीजा मानता हूँ। फिर भी मैं यह नहीं मानता कि अैसे डरसे पाला हुआ संयम हानिकारक है। यह डर प्रेमका डर है। अैसे डरके मारे भी मनुष्य अनीति करते रुक जाय, तो वह अच्छा ही है। समझ और स्वेच्छासे हुआ सुधार अुत्तम है। मगर बड़ोंकी शर्मके कारण या अुन्हें दुःख होनेके डरसे पाप करनेसे रुक जाना अुपेक्षा करने लायक नहीं। अिसमें पाशवीक बलात्कार नहीं है। शुरू शुरूमें सिर्फ अपने प्रिय जनोंको खुश करनेके लिअे किये हुअे सुधार बादमें स्थायी हो गये, अैसी कअी मिसालें मिलती हैं।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि अुपवास वग़ैरासे अेक दुखदायी परिणाम भी होता है। अुपवास वग़ैराके डरसे पाप करनेसे रुकनेके बदले अुसके असरमें आये हुअे लोग पाप छिपानेकी कोशिश करते पाये जाते हैं।

२५–४–’३२

गुणदोषका विचार करनेके बाद मेरी यह राय बनी है कि कुछ हालातमें अुपवास वग़ैरा प्रायश्चित्त ज़रूरी हैं। मैं मानता हूँ कि अिससे कुल मिलाकर आश्रमको लाभ ही हुआ है। मगर अितना याद रखनेकी ज़रूरत है कि अुपवास वग़ैरा प्रायश्चित्तके लिअे अधिकारकी ज़रूरत है। हर किसीको हर किसी वक़्त प्रायश्चित्तके तौरपर अुपवास करनेका अधिकार है ही नहीं। अवसर और पात्र देखकर

अिस अधिकारका फैसला हो सकता है। आम तौरपर अधिकार निर्णयकी ये शर्तें पाअी गयी हैं :

(१) दोष करनेवालेके मनमें प्रायश्चित्त करनेवालेके लिअे प्रेम होना चाहिये। प्रायश्चित्त करनेवालेके मनमें दोषीके लिअे प्रेम हो, पर दोषी अिस प्रेमको न पहचाने या खुद दुश्मन बनकर फिरता हो, तो अुसके लिअे प्रायश्चित्त नहीं हो सकता। जो अपनेको दुश्मन मानता है, वह प्रायश्चित करनेवालेके लिअे तिरस्कार भाव रखता है। अिसलिअे अुसपर प्रायश्चित्तका अुलटा असर पड़ सकता है, या अुपवास अुसपर पाशविक बलात्कारका रूप धारण कर सकता है और वह दुराग्रह माना जा सकता है। अिसके सिवा, जिसके साथ विशेष और प्रेम सम्बन्ध न हो, और अुसके दोषके लिअे प्रायश्चित्तका अधिकार सभीको हो, तो मनुष्यको प्रायश्चित्तसे फुरसत ही न मिले। सारी दुनियाके लिअे प्रायश्चित्ततो किसी महात्माको ही भले शोभा दे। यहाँ तो हम साधारण मनुष्योंका ही विचार करते हैं।

३१-५-'३२

(२) दोष प्रायश्चित्त करनेवालेके प्रति भी होना चाहिये। यहाँ कहनेका मतलब यह है कि दोषीके साथ जिसका कोअी सम्बन्ध नहीं, वह दोषीके लिअे प्रायश्चित्त न करे। जैसे, 'अ' की 'ब' के साथ दोस्ती है। पर 'ब' आश्रमवासी है, 'अ' का आश्रमके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं। 'ब' का दोष आश्रमके प्रति है। यहाँ 'अ' का न तो प्रायश्चित्त करनेका धर्म है और न अधिकार ही। अगर 'अ' बीचमें पड़ने जाय, तो आश्रमकी विषम स्थिति हो जाय और 'ब' की भी हो सकती है। 'अ' के पास 'ब' के दोषका निर्णय करनेका साधन भी नहीं हो

सकता। 'ब' का आश्रममें रहना सहन करके 'ब' की नीतिके लिअे और प्रायश्चित्तके लिअे अपनी जिम्मेदारी 'अ' ने आश्रमको सौंप दी।

(३) प्रायश्चित्त करनेवाला खुद अैसे दोषसे मुक्त होना चाहिये। 'छलनी छाजको क्या हँसे' वाली कहावत यहाँ लागू होती है।

(४) प्रायश्चित्त करनेवाला और तरहसे भी शुद्ध होना चाहिये, जिससे दोषीके दिलमें अुसकी अिज्जत हो। प्रायश्चित्तके गर्भमें ही पवित्रता समाअी हुअी है। और दोषीके मनमें प्रायश्चित्त करनेवालेके लिअे आदर न हो, तो अुसपर अुपवासका बुरा असर पड़ना स्वाभाविक हो जाता है।

(५) प्रायश्चित्त करनेवालेका निजी स्वार्थ न होना चाहिये। जैसे, 'अ' ने 'ब' को दस रुपये देनेका वादा किया है। अिसे पूरा न करना दोष है, मगर 'अ' पूरा न करे तो अिसके लिअे 'ब' प्रायश्चित्त न करे।

३–६–'३२

(६) प्रायश्चित्त करनेवाला रोषके वश न होना चाहिये। लड़केने कोअी दोष किया हो और अिससे बाप गुस्सेमें आकर अुपवास कर बैठे, तो वह प्रायश्चित्त नहीं। प्रायश्चित्तमें सिर्फ दया होनी चाहिये, क्योंकि अुसका हेतु खुद शुद्ध होना और दोष करनेवालेको शुद्ध करना है।

(७) दोष प्रत्यक्ष, सर्वमान्य और आत्माका हनन करनेवाला होना चाहिये और अुसका दोष करनेवालेको भान होना चाहिये। अन्दाजसे किसीको क़सूरवार मानकर प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता। अैसा करनेसे कअी बार खतरनाक नतीजे होते हैं। दोषके बारेमें शंका न होनी चाहिये। साथ ही, अपना माना हुआ दोष

प्रायश्चित्तका कारण न होना चाहिये। अैसा हो सकता है कि अिन्सान जिसे आज दोष भरा मानता हो, कल अुसे वही बिना दोषका लगे। अिसलिअे जो चीज़ दोष रूप मानी जाय, वह अैसी होनी चाहिये, जिसे समाज दोषरूप मानता हो। खादी न पहनना मेरे खयालसे बड़ा भारी दोष भले हो, मगर मेरे साथीको अिसमें कोअी बुराअी न लगती हो या अुसे महत्त्व न देकर वह यह समझे कि पहनो या न पहनो, और चलता रहे। अगर अैसे बर्तावको दोष मानकर मैं अुपवास कर बैठूं, तो वह प्रायश्चित्त नहीं, बल्कि बेजा दबाव माना जायगा। फिर, दोषीको दोष करनेका भान न हो, तो अुसके लिअे प्रायश्चित्त करना ठीक नहीं।

जिसे अैसी संस्था चलानी है जिसमें दण्ड वग़ैराकी गुंजायश नहीं और जहाँ हर काम धर्मके सहारे करनेकी कोशिश की जाती है, वहाँ यह चर्चा ज़रूरी है, क्योंकि संचालकोंका प्रायश्चित्त वहाँ सज़ा वग़ैराकी जगह ले लेता है। और किसी तरह संस्थाको सुगंधमयी रखना असम्भव है। सज़ासे भले ही बाहरी दिखावा क़ायम रखा जा सकता हो, बाहरी व्यवस्था रह सकती हो, संस्थाका काम बढ़ता दीखे। लेकिन सज़ा अिससे आगे नहीं जा सकती। प्रायश्चित्तसे भीतर और बाहर दोनोंकी रक्षा होती है और संस्था रोज़ मज़बूत होती जाती है। अिसलिअे अूपर बताये हुअे कुछ अैसे ही नियमोंकी ज़रूरत है।

अुपवास वग़ैरा प्रायश्चित होनेपर भी आदर्श सत्यसे आश्रम अलग ही है और अिसीलिअे, जैसा हम आगे देखेंगे, अुसे अभी तो हम अुद्योगमन्दिरके नामसे ही पहचानते हैं। अितना ज़रूर कहा जा सकता है कि संचालक सावधान हैं। अपनी खामियोंका अुन्हें खयाल

४–६–'३२

है और अुनकी यह कोशिश रहती है कि कहीं असत्य न घुस जाय। लेकिन जहाँ समय समयपर नये आदमी भरती होते रहें, जहाँ बहुतोंको विश्वासपर ही दाखिल किया जाता हो, जहाँ सब प्रान्तों और सब देशोंसे मनुष्योंका आनाजाना होता रहता हो, वहाँ सत्यका सभीमें बना रहना आसान बात नहीं। वहाँ तो मानो सत्यकी परीक्षा ही होती है! लेकिन संचालक सच्चे होंगे, तो परीक्षा कितनी ही कठिन होनेपर भी आश्रम अुसमें पास हो जायगा। सत्यकी शक्तिका कोअी माप नहीं, सत्यार्थीकी शक्तिका माप भले ही हो। लेकिन यदि वह जागरूक साधक हो, तो अुसकी शक्तिका भी अन्त नहीं।

प्रार्थना

२६-४-'३२

अगर सत्यका आग्रह आश्रमकी जड़में ही है, तो प्रार्थना अुस जड़का मुख्य आधार है। जबसे आश्रम स्थापित हुआ, तभीसे रोज़ प्रार्थनासे ही आश्रमका काम शुरू हुआ है और प्रार्थनासे ही ख़त्म हुआ है। मेरी जानकारीमें अेक दिन भी प्रार्थनाके बिना खाली नहीं गया। मुझे अैसे मौकोंकी याद है, जब प्रार्थनाके स्थानमें बरसात या अैसे ही किसी कारणसे अेक ही ज़िम्मेदार आदमी हाज़िर हुआ हो। शुरूसे ही नियम तो अैसा ही रहा है कि जो बीमार न हों या बीमारी-जैसा ही दूसरा सबल कारण जिन्हें न हों, अैसे सभी सज्ञान व्यक्ति प्रार्थनामें शरीक हों। शामकी प्रार्थनाके वक्त तो अिस नियमकी पाबन्दी ठीक ठीक हुअी मानी जायगी। मगर सुबहकी प्रार्थनाके बाबत अैसा नहीं कहा जा सकता।

सुबहकी प्रार्थनाका समय शुरू शुरूमें अनिश्चित था। अुसके बारेमें मैंने प्रयोग किये। क्रमशः चार, पाँच, छह और सात बजेकी

प्रार्थना रखी गयी थी। मगर समय समयपर किये गये मेरे आग्रहके कारण आखिर ४–१० या ४–२० का समय तय हुआ है। यानी जागनेकी घंटी ४ बजे बजे, तो अुसके बाद मुँह हाथ धोकर और दतौन करके सब लोग ४–२० तक आ जायँ।

मैंने माना है कि हिन्दुस्तान-जैसे समशीतोष्ण प्रदेशमें मनुष्य जितना जल्दी अुठे अुतना ही अच्छा है। करोड़ों आदमियोंको जल्दी अुठना ही पड़ता है। किसान देरसे अुठे तो अुसकी खेती बिगड़ जाय।

२७–४–'३२

पशुओंकी सँभाल बड़े सबेरे ही होती है, गाय सबेरे सबेरे ही दुही जाती है। जिस देशमें यह हालत हो वहाँ सत्यार्थी, मुमुक्षु, सेवक या संन्यासी सुबह दो-तीन बजे अुठे, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह कोअी बड़ी बात कर रहा है। हाँ, न अुठे तो अचरज हो। सभी देशोंमें धार्मिक मनुष्य, प्रभुके भक्त और गरीब किसान जल्दी ही अुठते हैं। भक्त भगवानके ध्यानमें लीन होते हैं, किसान अपनी खेतीके कामोंमें लगकर अपनी और दुनियाकी सेवा करते हैं। मेरे खयालसे दोनों ही भक्त हैं। पहले ज्ञानपूर्वक भक्त हैं। किसान अनजानमें अपनी मेहनतसे प्रभुको भजते हैं, क्योंकि अुनपर जगत निर्भर करता है। वे मेहनत न करके ध्यान लगाकर बैठ जायँ, तो धर्मभ्रष्ट हो जायँ और अपने नाशके साथसाथ संसारका भी नाश करें।

४–६–'३२

मगर किसानको हम भक्त मानें या न मानें? जहाँ किसानको, मजदूरको या दूसरे गरीबोंको अिच्छासे या अनिच्छासे बड़ी सुबह अुठना पड़ता है, वहाँ जिसने सेवाको धर्म माना है, जो सत्यनारायणका पुजारी है, वह कैसे सोता रहे? फिर आश्रममें तो शक्ति और

सेवाके लिअे अुद्योगका मेल बैठानेकी कोशिश है। अिसलिअे कितनी ही अड़चनें महसूस हों, तो भी आश्रममें सभी सशक्तोंको जल्दी अुठना ही चाहिये। यह मुझे हमेशा दीपककी तरह साफ दिखाअी दिया है, और मैंने चार बजेका वक्त जल्दीका नहीं, बल्कि अुठनेका देरसे देरका वक्त माना है।

कअी प्रयोगोंके बाद अब बरसों से आश्रममें अुठनेका घंटा चार बजे बजता है और प्रार्थना ठीक ४-१० या ४-२० पर शुरू होती है।

५-६-'३२

प्रार्थना कहाँ की जाय? कोअी मन्दिर बनाकर या बाहर आकाशके नीचे? वहाँ भी कोअी चबूतरा बनाकर या रेत और धूलपर ही? कोअी मूर्ति खड़ी की जाय या नहीं? वगैरा सवाल भी तय करने थे ही। अन्तमें आकाशके नीचे, मिट्टी या रेतपर ही बैठकर, मूर्तिके बिना प्रार्थना करनेका निश्चय हुआ। आश्रमका आदर्श ग़रीबी धारण करना है, भूखों मरते करोड़ोंकी सेवा करना है। आश्रममें कंगालके लिअे जगह है। यह कहा जा सकता है कि जो नियमकी पाबन्दी करनेको तैयार हैं, वे सभी भरती हो सकते हैं। अैसे आश्रममें प्रार्थना-मन्दिर अींटचूनेका मकान नहीं हो सकता। अुसके लिअे आकाशका छप्पर और दिशाओंरूपी खंभे और दीवारें ही काफी होनी चाहियें। चबूतरा बनवानेका विचार था, वह भी रद हुआ। संख्याकी हद जब नहीं बाँधी जा सकती, तो फिर चबूतरेकी हद कौन बाँधे? बहुत बड़ा चबूतरा बनवानेमें खर्च बहुत होता है। अनुभवसे पाया गया कि मकान या चबूतरा न बनानेका विचार ठीक था। आश्रमके बाहरके लोग भी प्रार्थनामें

आ सकते हैं। अिससे कअी बार तादाद अितनी हो जाती है कि कितना ही बड़ा चबूतरा बनाते, फिर भी कभी कभी छोटा पड़ जाता।

फिर, आश्रमकी प्रार्थनाका अनुकरण दिन दिन बढ़ते जानेके कारण भी आकाश-मन्दिर ही ठीक साबित हुआ है। जहाँ जहाँ मैं जाता हूँ, वहीं सुबह शाम प्रार्थना होती ही है। अुसमें ख़ासकर शामको अितनी भीड़ होती है कि वह खुले मैदानमें ही हो सकती है। और मुझे मन्दिरमें ही प्रार्थना करनेकी आदत पड़ी हुअी होती, तो शायद सफ़रमें सार्वजनिक प्रार्थना करनेका विचार भी नहीं आता।

फिर, आश्रममें सब धर्मोंके लिअे समान आदर है। सब धर्मोंके लोगोंको भरती होनेकी छूट है। अुनमें मूर्तिपूजक भी हो सकते हैं, मूर्तिपूजाको न माननेवाले भी हो सकते हैं। किसीको आघात न पहुँचे, अिस ख़यालसे आश्रमकी सामाजिक प्रार्थनामें मूर्ति नहीं रखी जाती। जो अपने कमरेमें रखना चाहें, अुन्हें कोअी मनाही नहीं है।

प्रार्थनामें क्या होता है?

सुबहकी प्रार्थनामें 'आश्रमभजनावली'में छपे हुअे श्लोक, अेकाध भजन, रामधुन और गीतापाठ होता है। शामको गीताके दूसरे अध्यायके पिछले अुन्नीस श्लोक, भजन, रामधुन और अक्सर कुछ न कुछ पाठ होता है।

७–५–'३२

पहलेसे ही अैसा नहीं था। श्लोक काकासाहब कालेलकरके छाँटे हुअे हैं। काका साहब आश्रममें शुरूसे ही शरीक हैं। काका साहबकी जानपहचान मगनलालने शान्तिनिकेतनमें की। जब मैं

विलायतमें था, तब मगनलालने बच्चों सहित शान्तिनिकेतनका आसरा लिया था। दीनबन्धु अेण्ड्रूज और स्व० पियर्सन अुस वक़्त शान्तिनिकेतनमें थे। मैंने जहाँ अेण्ड्रूज कहें, वहाँ ठहरनेकी मगनलालको सलाह दी थी। अेण्ड्रूजने शान्तिनिकेतन पसन्द किया। काका साहब अिन दिनों शान्तिनिकेतनमें थे। वहाँ शिक्षकका काम करते थे। मगनलाल और काका साहबके बीच निकट सम्बन्ध हो गया। मगनलालको संस्कृत जाननेवाले अध्यापककी कमी महसूस हुआ करती थी। वह काका साहबने पूरी कर दी। अुसमें वहाँके चिन्तामणि शास्त्री भी मिल गये। काका साहबने प्रार्थनामें श्लोक सिखाये। शान्तिनिकेतनमें जो श्लोक सबने सीखे थे, वे आजसे ज्यादा थे। अुनमेंसे कुछ श्लोक काका साहबसे मशवरा करके समय बचानेकी ख़ातिर निकाल दिये गये। जो बाकी रहे वे आज चलते हैं। अिस तरह प्रातःकालमें गाये जानेवाले श्लोक आश्रमके आरम्भकालसे आजतक चले आ रहे हैं, और सम्भव, है कि अेक दिन भी अैसा न हुआ कि ये श्लोक आश्रममें न गाये गये हों।

अिन श्लोकोंपर काफ़ी हमले हुअे हैं,—किसी वक़्त समय बचानेके ख़यालसे, किसी समय अिस ख़यालसे कि कुछ श्लोक अैसे हैं जिन्हें सत्यका पुजारी नहीं गा सकता और कभी कभी अिस मान्यतासे कि अिन श्लोकोंको हिन्दुओंके अलावा और लोग नहीं गा सकते। यह तो निर्विवाद है कि ये श्लोक हिन्दू समाजमें ही गाये जानेवाले हैं, लेकिन मुझे अैसा नहीं लगा कि अिनमें कोअी अैसी बात है, जिससे दूसरे धर्मवालोंको अिनके गानेमें या गाते समय मौजूद रहनेमें कोअी चोट पहुँचे। जिन मुसलमान और अीसाअी मित्रोंने ये श्लोक सुने हैं, अुन्होंने

भी विरोध नहीं किया। जिनको दूसरे धर्मके लिअे आदर है, अुन्हें चोट लगनी भी न चाहिये। और यहाँ अैसोंका जिक्र हो सकता है। अिन श्लोकोंमें किसीकी निन्दा या अुपेक्षा जैसी कोअी बात है ही नहीं। आश्रममें हिन्दू धर्मवालोंकी बहुत बड़ी संख्या होनेके कारण पसन्दगी तो हिन्दूधर्मके श्लोकोंकी ही हो सकती है। लेकिन दूसरोंका कुछ भी गाया या पढ़ा न जाय, अैसा कोअी नियम नहीं। बल्कि, प्रार्थनामें प्रसंग आनेपर अिमाम साहब कुरानकी आयतें पढ़ते थे। मुसलमानी भजन या ग़ज़लें तो बार बार गायी जाती हैं। यही बात अीसाअी भजनोंके बारेमें है।

मगर बहुत आग्रहके साथ जो विरोध हुआ, वह सत्यके खयालसे हुआ। सरस्वती, गणेश वग़ैराकी पूजा सत्यका हनन करनेवाली है। कमलके आसनपर बैठी, वीणा वग़ैरा हाथमें लिअे सरस्वती नामकी किसी देवीकी हस्ती ही नहीं। मोटे पेटवाला और सूँडवाला गणेश नामका कोअी देवता है ही नहीं। अेक आश्रमवासीने यह दलील बड़ी नाम्रताके साथ, मगर अुतने ही जोरसे दी कि अैसे काल्पनिक देवताओंकी प्रार्थना करनेमें और बच्चोंको सिखानेमें सत्यका हनन होता है। अुन्हें दूसरे आश्रमवासियोंकी हिमायत भी हासिल थी। अिस बारेमें मैंने अपनी राय यों दी:

"मैं अपनेको सत्यका पुजारी मानता हूँ, फिर भी मुझे ये श्लोक बोलनेमें या बच्चोंको सिखानेमें जरा भी चोट नहीं पहुँचती। अगर अूपरकी दलीलसे कितने ही श्लोक रद कर दिये जायँ, तो अुनके गर्भमें हिन्दूधर्मकी जो सारी रचना भरी है, अुसपर हमला होता है। मैं यह नहीं कहता कि हिन्दूधर्ममें हमलेके लायक जो

चीज हो, फिर वह कितनी ही पुरानी हो, अुसपर हमला न किया जाय। मगर अिसे मैं हिन्दूधर्मका कमजोर या हमला करने लायक अंग नहीं मानता। अिसके विपरीत, मेरा विश्वास है कि हिन्दूधर्ममें यह अंग रहा है, तो शायद यह अुसकी विशेषता है। मैं खुद सरस्वती या गणेश जैसी किसी अलग हस्तीको नहीं मानता। ये सब वर्णन अेक ही अीश्वरकी स्तुतियाँ हैं। अुसके बेशुमार गुणोंको भक्त कवियोंने मूर्तिमान कर दिया है। यह कोअी बुरी बात नहीं हुअी। अैसे श्लोकोंमें अपनेको या और किसीको धोखा देनेकी कोअी बात नहीं। देहधारी जब अीश्वरकी स्तुति करने बैठता है, तब वह अुसके बारेमें अपनी पसन्दकी कल्पना कर लेता है। अुसकी कल्पनाका अीश्वर अुसके लिअे तो है ही। निर्गुण निराकार अीश्वरकी प्रार्थना बोलते ही अुसमें गुणोंका आरोपण होता है। गुण भी आकार ही है। असलमें अीश्वरका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह वाणीकी सीमासे बाहर है। मगर पामर मनुष्यको तो अुसकी कल्पनाका ही आधार है। अुसीसे वह पार लगता है और अुसीसे डूबता भी है। अीश्वरके लिअे जो भी विशेषण शुद्ध हेतुसे विश्वासके साथ गाओ, वह तुम्हारे लिअे सच्चा है। और असलमें अैसे तो झूठा है ही, क्योंकि अुसके लिअे कोअी भी विशेषण काफ़ी नहीं होता। मैं खुद बुद्धिसे यह बात जानता हूँ, फिर भी अुसके गुणोंका बखान किये बिना, अुसका ध्यान किये बिना नहीं रह सकता। मेरी बुद्धि जो कहती है, अुसका असर हृदयपर नहीं होता। मैं यह स्वीकार करनेको तैयार हूँ कि मेरे कमज़ोर दिलको गुणोंवाले अीश्वरका आसरा चाहिये। जो श्लोक मैं पिछले पन्द्रह सालसे गाता आया हूँ, वे मुझे शान्ति देते हैं, मुझे अपने ख़यालसे सच्चे मालूम होते हैं। अुनमें मुझे सौन्दर्य,

काव्य, और शान्ति नजर आती है। सरस्वती, गणेश वगैराके लिअे विद्वान लोग कअी कथायें कहते हैं। वे सब बेकार नहीं। अुनका भेद मुझे मालूम नहीं। अुनमें मैं गहरा अुतरा भी नहीं। अपनी शान्तिके लिअे मुझे गहरा अुतरनेकी ज़रूरत भी नहीं जान पड़ी। अिसलिअे सम्भव है मेरा अज्ञान ही मुझे बचा लेता हो। सत्यकी खोज करते हुअे अिस चीज़की गहराअीमें जानेकी ज़रूरत मुझे महसूस नहीं हुअी। अपने अीश्वरको मैं जानता हूँ। अुस तक मैं पहुँचा नहीं हूँ, मगर मेरे लिअे अितना काफ़ी है कि मैं अुस दिशामें जा रहा हूँ।"

मैं यह आग्रह नहीं रख सकता कि अैसी दलीलसे साथियोंको सन्तोष होगा ही। मुझे पता नहीं कि अिससे किसको कहाँ तक सन्तोष हुआ। अिस बारेमें अेक बार अेक समिति मुक़र्रर की गयी थी। जी भरके चर्चा होनेके बाद यह फ़ैसला हुआ कि जो भी चुनाव किया जायगा, किसी न किसीको अुसीमें कोअी न कोअी दोष तो दिखेगा ही। अिसलिअे जो है अुसीको रहने दिया जाय। अुन श्लोकोंका अर्थ सब अपनी अपनी कल्पनाके अनुसार करेंगे। मैं जिन बातोंका बयान कर गया हूँ, वे सब अेक साथ नहीं घटीं। अलग अलग मौकोंपर अलग अलग विरोध हुअे। वे सब मैंने अेक जगह अिकट्ठे करके दे दिये हैं।

श्लोकोंके साथ भजन होते ही थे। प्रार्थनाकी शुरूआत दक्षिण अफ्रीकामें भजनसे ही हुअी थी। श्लोक हिन्दुस्तानमें आनेके बाद जोड़े गये। भजन गाने-गवानेमें मगनलाल ही मुखिया थे। अिससे हम दोनोंको असन्तोष था। जो कुछ करना हो, अच्छी तरह यानी सच्ची रीतिसे करनेका लोभ था। अिसलिअे कोअी

संगीतशास्त्री मिले, तो अुससे सब तालीम लें और रसके साथ भजन गायें। भजनमें अेक स्वर न निकले, तो अुसमें तल्लीन होना असम्भव नहीं, तो मुश्किल तो था ही। मगर शास्त्री अैसा होना चाहिये, जो आश्रमके नियमोंका पालन करे। अैसा लगा कि अिस तरहका संगीतशास्त्री मिलना कठिन है। तलाश करते करते मगनलालको स्व० संगीताचार्य विष्णु दिगम्बर शास्त्रीने अपने पहले शिष्य नारायण खरेको प्रेमपूर्वक दे दिया। अुन्होंने आश्रमके ख़यालसे पूरा सन्तोष दिया, और वे अब आश्रमके पूरे सदस्य बनकर रह रहे हैं। अुन्होंने भजनोंमें रस अूँड़ेला और जो 'आश्रम भजनावली' आज हजारों लोग आनन्दके साथ पढ़ते हैं, वह मुख्यतः अुन्हींकी कृति है। भजनके साथ अुन्होंने रामधुन जारी की।

अभी प्रार्थनाका चौथा अंग बाकी है। यह है गीतापाठ। समय समयपर तो गीता पढ़ी ही जाया करती थी। बरसोंसे आश्रमवासी गीताको आचारविचारके लिअे प्रमाण-ग्रंथ मानते हैं। कोअी आचार या विचार शुद्ध है या नहीं, यह देखनेके लिअे आश्रम गीताको अैसी ही समझता है, जैसे हिज्जे या अर्थ जानना चाहनेवाला विद्यार्थी शब्द या अर्थकोषको मानता है। अिस गीताका अर्थ हर आश्रमवासी जाने तो अच्छा, वह सबको ज़बानी याद हो जाय तो और भी अच्छा, और अैसा न हो सके तो भी मूलको शुद्ध अुच्चारण करके पढ़ सके तो ठीक — अिस क़िस्मके विचारोंको लेकर रोज़ गीतापाठ करना शुरू किया। पहले थोड़े श्लोक थे, और याद हो जाने तक वे ही श्लोक रोज़ बोले जाते। अिसमेंसे पारायण पैदा हुआ और अब गीताके अध्याय अिस ढंगसे जमा लिये गये हैं कि चौदह दिनमें पूरी गीता पढ़ी जाय। अिस तरह हर आश्रमवासी जान सकता है कि किस दिन कौनसे श्लोक पढ़े

जाते हैं। हर दूसरे शुक्रवारको पहला अध्याय शुरू होता है। यह लिखा जा रहा है अुसके बादका शुक्रवार (१० जून, १९३२) पहले अध्यायका है। अठारह अध्याय चौदह दिनमें पूरे करनेके लिअे ७+८, १२+१३, १४+१५, १६+१७ अेक ही दिन अेक-साथ गाये जाते हैं।[६]

मैं कह चुका हूँ कि शामकी प्रार्थनामें भजन और रामधुनके सिवा गीताके दूसरे अध्यायके पिछले अुन्नीस श्लोक बोले जाते हैं। अिन श्लोकोंमें स्थितप्रज्ञके लक्षण कहे गये हैं। सत्याग्रहीके भी यही लक्षण होने चाहियें। जो चीज़ स्थितप्रज्ञ साधता है, वही सत्याग्रहीको साधनी है। यह हमेशा याद रहे, अिसीलिअे ये श्लोक गाये जाते हैं।

रोज़ अेक ही प्रार्थनाके ठीक होनेके बारेमें यह शंका अुठाअी गयी है कि 'रोज़ अेक ही प्रार्थना करनेसे वह यंत्रवत् हो जाती है; अिससे अुसका असर जाता रहता है।' यह सही है कि प्रार्थना यंत्रवत् हो जाती है। हम खुद यंत्र हैं। अगर हम अीश्वरको यंत्र चलानेवाला मानते हैं, तो हमें यंत्रकी तरह चलना ही चाहिये। सूरज वग़ैरा अपना काम यंत्रकी तरह न करें, तो जगत् अेक क्षण भी नहीं चल सकता। पर यंत्रवत्का अर्थ जड़ बनकर नहीं है। हम चेतन हैं। चेतनको शोभा दे अुतना ही चेतन यंत्रकी तरह काम करे, वैसा चले। प्रार्थना अेक ही हो या अनेक, ये दो सवाल नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि अनेक प्रार्थनाअें रखनेपर भी अुनका असर न पड़े। हिन्दुओंकी वही गायत्री, अिस्लामका वही कलमा, अीसाअीकी वही प्रार्थना अिन धर्मोंके लाखों आदमी सदियोंसे रोज़ पढ़ते आये हैं। लेकिन अिससे अुनका चमत्कार कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ा है। अगर अुनके पीछे मनुष्यकी

भावना रहेगी, तो अुनका चमत्कार और भी बढ़ेगा। यही गायत्री, यही कलमा, यही अीसाकी प्रार्थना नास्तिक पढ़े या तोता पढ़े, तो अुसका कुछ भी असर न होगा। मगर जब यही आस्तिकके मुँहसे रोज़ निकलती है, तब अुसकी भव्य शक्ति रोज़ बढ़ती जाती है। हमारी मुख्य खुराक रोज़ वही की वही होती है। गेहूँ खानेवाले और और चीज़ें भले ही लें, अुनमें बदला करें, परन्तु गेहूँकी रोटी तो रोज़ लेंगे ही। अिससे अुनका शरीर बनेगा, वे अूबेंगे नहीं। अूब जायँ तो शरीरका अन्त नज़दीक आ जाय। यही बात प्रार्थनाकी है। मुख्य प्रार्थना तो अेक ही होगी। आत्माको यदि अुसकी भूख होगी, तो वह अेक प्रार्थनासे भी अूबेगी नहीं, बल्कि पुष्ट होगी। जिस दिन प्रार्थना न होगी, अुस दिन अुसे अुसकी भूख रहेगी। वह अुपवाससे भी ज्यादा ढीला लगेगा। शरीरके लिअे किसी दिन अुपवास ज़रूरी होता है। लेकिन आत्माको प्रार्थनाकी बदहजमी हुअी अैसा कभी सुनी नहीं।

असल बात यह है : हममेंसे बहुतेरे आत्माकी भूखके बिना प्रार्थना करते हैं। आत्मा है, यह माननेका 'फ़ैशन' है, यह रिवाज है, अिसलिअे 'है यह मानते हैं।', अिस तरहकी ख़राब हालत बहुतोंकी होती है। कितनों ही के लिअे 'आत्मा है', यह अुनकी बुद्धि निश्चित कर देती है। अैसोंके वह हृदयगत नहीं होती। अिसलिअे अुन्हें प्रार्थनाकी ज़रूरत नहीं होती। बहुतेरे प्रार्थनामें यह मानकर शरीक होते हैं कि समाजमें रहकर वही करना चाहिये, जो समाज करता है। अैसोंको विविधताकी ज़रूरत जान पड़ती है। मगर दरअसल वे प्रार्थनामें शरीक होते ही नहीं। वे संगीत सुनने आते हैं, तमाशा देखने आते हैं, प्रवचन सुनने आते हैं, लेकिन अीश्वरके साथ अेकता साधने नहीं आते।

प्रार्थनाका अर्थ क्या है ?

१२–६–'३२

प्रार्थनाका मूल अर्थ तो माँगना होता है। अीश्वरसे या बड़ोंसे नम्रताके साथ की गयी माँग ही प्रार्थना है। यहाँ अिस अर्थमें प्रार्थना शब्द काममें नहीं लिया गया है। प्रार्थना यानी अीश्वरकी स्तुति, भजन कीर्तन, (अुपासना), सत्संग, अंतर्ध्यान, अन्तरशुद्धि।

परन्तु अीश्वर कौन ? वह कोअी हमारे शरीरसे या संसारसे बाहर रहनेवाला व्यक्ति नहीं। वह तो सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है। अुसे स्तुतिकी क्या ग़रज़ ? सर्वव्यापक होकर वह सब कुछ सुनता है, हमारे विचार जानता है; जोरसे बोलकर अुसे क्या सुनाया जाय ? वह हमारे दिलमें बसा हुआ है। नाख़ून अंगुलीके जितना पास है, अुससे भी वह हमारे ज्यादा नज़दीक है। यहाँ प्रार्थना क्या करेगी ?

चूँकि अैसी परेशानी है, अिसीलिअे प्रार्थनाका अर्थ भीतरी शुद्धि भी किया गया है। बोलकर अीश्वरको नहीं सुनाना है। बोलकर या गाकर हमें अपनेको ही सुनाना है, नींदसे जागना है। हममेंसे कअी अीश्वरको बुद्धिसे पहचानते हैं। कितनोंको अुसके बारेमें भी शंका है। किसीने अीश्वरको आँखोंसे नहीं देखा। हमें अुसे दिलसे पहचानना है, अुसका साक्षात्कार करना है, अुसके स्वरूपमें मिल जाना है। अिसीके लिअे प्रार्थना करते हैं।

यह अीश्वर, जिसके हम दर्शन करना चाहते हैं, सत्य है। या यों कहिये कि सत्य ही अीश्वर है। सत्यका अर्थ अितना ही नहीं कि सच बोला जाय। सत्य यानी अिस जगत्में जो अपने रूपमें हमेशासे था, है और रहेगा और अुसके सिवा दूसरा कुछ

भी नहीं, जो अपनी शक्तिसे है, जिसे किसीका सहारा नहीं चाहिये, बल्कि जगतमें जो कुछ है अुसीके सहारे है। सत्य ही शाश्वत है, बाकी सब क्षणिक है। अुसे किसी आकारकी जरूरत नहीं। वही शुद्ध चेतन है, वही शुद्ध आनन्द है। अुसे अीश्वर कहते हैं, क्योंकि अुसीकी सत्तासे सब कुछ चलता है। वह और अुसका क़ानून अेक ही है, अिसलिअे कानून चेतनरूप है। अिस क़ानूनके सहारे सारा तंत्र चलता है। अिस सत्यकी आराधना ही प्रार्थना, यानी अपनी सत्यमय होनेकी तीव्र अिच्छा है। यह अिच्छा चौबीसों घंटे होनी चाहिये। मगर हममें अितनी जाग्रति नहीं है कि हम मुक़र्रर समयपर प्रार्थना, आराधना या अुपासना करें ही और अैसा करते करते हमें चौबीसों घंटे सत्यका ध्यान रहे।

आश्रम अिस तरहकी प्रार्थनाको प्राप्त करना चाहता है। अभी तो वह अुससे बहुत दूर है। अूपर बताये हुअे सब बाहरी अुपाय हैं। मगर किसी भी तरह प्रार्थना हृदयमें अुतारनेका ख़याल है, और अगर आश्रमकी प्रार्थना अभी तक भी आकर्षक नहीं बनी, अभी तक भी आश्रमवासियोंको हाजिर रहनेके लिअे टोकना पड़ता है, तो अुसका अर्थ यह है कि आश्रममें हममेंसे किसीमें भी मैंने कहा अुस अर्थमें प्रार्थना मूर्तिमान नहीं बनी है।

हृदयमें अुतरी हुअी प्रार्थनामें तो फक्त अितना अंतर्ध्यान रहना चाहिये कि अुस वक्त अुसे किसी दूसरी चीजका भान ही न हो। भक्तको विषयीकी अुपमा ठीक ही दी गयी है। विषयीको जब अुसका विषय मिल जाता है, तब वह अपना भान भूलकर विषयरूप बन जाता है। अुसकी सारी अिन्द्रियाँ तदाकार हो जाती हैं, क्योंकि अुसे अपने विषयके सामने और कुछ सूझता ही नहीं। अिससे भी ज्यादा तदाकारिता अुपासकमें होनी चाहिये। यह तो

बहुत कोशिशसे, तपसे, संयमसे ही समय पाकर आती है। जहाँ अैसा कोअी भक्त होता है, वहाँ प्रार्थनामें जानेके लिअे किसीको ललचाना नहीं पड़ता। अुसकी भक्ति औरोंको जबरदस्ती खींचती है।

यहाँ तक सामूहिक प्रार्थनाके बारेमें लिखा गया। मगर आश्रममें निजी, अेकान्त प्रार्थनापर भी जोर दिया जाता है। जो अकेला प्रार्थना करता ही नहीं, वह भले ही सामूहिक प्रार्थनामें शरीक हो, मगर अुसमेंसे वह बहुत कुछ लेता नहीं। समाजके लिअे सामूहिक प्रार्थना बहुत जरूरी है। लेकिन जैसे व्यक्तिके बिना समाज हो ही नहीं सकता, अुसी तरह निजी प्रार्थनाके बिना सामूहिक प्रार्थना सम्भव नहीं। अिसलिअे हर आश्रमवासीको बार-बार चेतावनी दी जाती है कि अुसे सोतेजागते अनेक बार अपने आप ही अंतर्ध्यान होना जरूरी है। अिसके लिअे कोअी पहरा नहीं लगा सकता। अिसका हिसाब नहीं हो सकता। मैं नहीं कह सकता कि आश्रममें यह प्रार्थना कहाँ तक होती है। मैं अैसा मानता हूँ कि थोड़ी बहुत मात्रामें सभी अिस तरफ कोशिश करते हैं।

अहिंसा

यह कहा जा सकता है कि ज्यादासे ज्यादा परेशानी शायद अहिंसा पालनके बारेमें हुअी है। सत्यकी पहेलियाँ रहा ही करती हैं। प्रार्थना हृदयमें नहीं अुतरती। मगर ये दोनों क्या हैं, यह समझनेमें बहुत मुश्किल नहीं पड़ती। अहिंसाके समझनेमें ही दम निकल जाता है। जितनी चर्चा अहिंसाकी हुअी है, अुतनी आश्रममें और किसी विषयकी नहीं हुअी होगी। कोअी काम किया, वह हिंसा है या अहिंसा, यह सवाल आश्रममें अुठा ही

करता है। और बहुत बार हिंसा-अहिंसाका भेद जानते हुअे भी अहिंसाका पालन नहीं किया जा सकता। पालन करनेमें अक्सर कमज़ोरी आड़े आती है। यह कमज़ोरी भी अैसी नहीं होती, जो आसानीसे दूर हो सके। मन, वचन और शरीरसे किसीका भी, अपना या दूसरेका भला मानकर भी, किसी जीवको दुःख न देना अहिंसा है। अिसपर पूरी तरह अमल करना देहधारीके लिअे असम्भव है। वह अेक साँस लेनेमें ही बेशुमार सूक्ष्म जीवोंकी हिंसा करता है। आँख टिमटिमानेमें जो जीव आँखपर बैठना चाहते हैं, अुनकी हिंसा होती है। खेती करनेमें अनेक छोटे-बड़े जानवरोंकी हिंसा होती है। साँप-बिच्छू काटेंगे, अिस डरसे अुन्हें मारें नहीं तो पकड़कर दूर छोड़ आते हैं। अुन्हें पकड़नेमें थोड़ा दुःख तो होता ही है। अुसे भले ही अनिवार्य समझा जाय, मगर अूपरकी व्याख्याके अनुसार वह हिंसा तो है ही।

मैं जो खाता हूँ, जो जगह रोकता हूँ, जो कपड़े पहनता हूँ, वह बचाअूँ, तो यह स्पष्ट है कि वह सब मुझसे जिन्हें ज्यादा जरूरत है अुन गरीबोंके काम आये। मेरे स्वार्थके कारण अुन्हें वे चीज़ें नहीं मिल पातीं। अिसलिअे मेरे भोगसे मेरे कंगाल पड़ोसीकी हिंसा होती है। जीनेके लिअे मैं कअी तरहकी वनस्पति खाता हूँ, अुसमें वनस्पति जीवनकी हिंसा है।

अिस व्यापक हिंसामें पड़ा हुआ मैं किस तरह अहिंसा पालूँ? पगपगपर नयी समस्यायें खड़ी ही होनेवाली हैं।

अूपर बताअी हुअी हिंसा तो अैसी है, जो समझमें आ सके। मगर हम अेक दूसरेसे जो सूक्ष्म द्वेष करते हैं, अुसका क्या हो? शिक्षक लड़कोंको मारे, माँ बच्चोंको डाँटे, सरीखे सरीखे

अेक दूसरेको लाल आँखें दिखायें, यह सब हिंसा ही है और बुरी तरहकी हिंसा है। अिसे वशमें ही नहीं किया जा सकता। जहाँ रागद्वेष है, वहाँ हिंसा ही है। यह हिंसा कैसे मिटे?

अिसलिअे पहले तो आश्रममें यह सीख लेते हैं कि देश, कुटुम्ब या अपने लिअे किसीका सिर धड़से अुड़ा देना तो हिंसा है ही। मगर क्रोध वग़ैरासे रोज़ होनेवाली सूक्ष्म हिंसा अिस मोटी हिंसासे शायद अधिक खराब है। अलग हिसाब लगायें तो दुनियामें रोज़ होनेवाले खूनोंकी संख्या मामूली जान पड़ेगी। दुनियाकी आबादीके प्रमाणमें जो मौतें और तरहसे होती हैं, अुनसे तुलना करनेपर खूनोंकी तादाद नाम मात्रकी मालूम होगी। मगर क्रोध वग़ैरासे रोज़ होनेवाली सूक्ष्म हिंसाका अन्दाज़ा ही नहीं लग सकता।

अिन सब तरहकी हिंसाओंको काबूमें लेनेकी कोशिश आश्रममें रोज़ होती है। सब अपनी कमज़ोरी समझते हैं। साँप वग़ैराका डर मुझसे लगाकर सबको है। अिसलिअे अुन्हें पकड़कर किसीको नुकसान न हो, अैसी जगह छोड़ आनेका आम रिवाज है। और कोअी डरके मारे अुसे मार डाले, तो वह अुलाहनेका पात्र नहीं गिना जाता। अेक बार गोशालामें अेक भयंकर नाग अैसी जगह घुस बैठा था, जहाँसे अुसे पकड़ा नहीं जा सकता था। अैसी हालतमें वहाँ ढोर बाँधनेमें जोखम थी। आदमी काम करते भी डरते थे। मजबूर होकर मगनलालने अुसे मार डालनेकी मंजूरी दे दी। मुझसे जब अुसने यह बात कही, तो मैंने अुसका काम पसन्द किया। मैं मानता हूँ कि मैं खुद आश्रममें होता तो और कोअी अुपाय नहीं कर सकता था। मुझे अपनी बुद्धि कहती है कि साँपको भी अपना सगा समझकर बर्ताव करना

चाहिये। अुसके काटनेसे मौत हो जाय, तो वह जोखम अुठाकर भी मुझे साँपको हाथसे पकड़कर डरनेवालोंके पाससे हटाना चाहिये। मगर मेरे दिलमें न अितनी मित्रभावना है, न अितनी निर्भयता है। और न साँप वगैराके काटनेसे होनेवाली मौतकी लापरवाही है। अिन तीनों बातोंकी हृदयको तालिम देनेकी मेरी कोशिश है, पर मैं सफल नहीं हुआ। यह सम्भव है कि मुझपर साँप हमला करे तो मैं अुसका हमला सह लूँ और अुसे मारनेको तैयार न होअूँ। दूसरेके शरीरको जोखममें डालनेको मैं तैयार नहीं हूँ।

अेक समय बन्दरोंका अुपद्रव अितना सख्त हो गया था कि वे फ़सलको बेहद नुक़सान पहुँचाने लगे। रखवाले अुन्हें गोफणसे डराते, पर वे क्या डरें? अन्तमें वे बन्दरोंको घायल करने लगे। अेक लँगड़ा हो गया। मुझे अिसमें शरीर दंडसे ज्यादा हिंसा दिखाअी दी। अिस बारेमें साथियोंसे चर्चा करके यह फ़ैसला हुआ कि वे न जायँ, तो गोफण या दूसरी तरहसे घायल करनेकी अपेक्षा दूसरे किन्हीं हल्के अुपायोंसे अेक-दोकी जान ली जाय और अुपद्रवको खत्म किया जाय। यह आखिरी फ़ैसला करनेमे पहले मैंने 'नवजीवन'के ज़रिये और मित्रोंको लिखकर जाहिर चर्चा की थी। अिसलिअे यहाँ सारी दलीलोंमें नहीं अुतरता। जिन्हें अिस विषयमें ज्यादा जाननेकी अिच्छा हो वे 'नवजीवन'[७] पढ़ लें।

मनुष्यके सिवा दूसरे प्राणी हिंसक हों, तो भी अुन्हें न मारनेका धर्म हिन्दुस्तानके बाहर माना गया हो, यह मैं नहीं जानता। मालूम हुआ है कि अैसा धर्म संत फ्रांसिस-जैसे व्यक्तिने पाला था। लेकिन अुसका आम लोगोंमें पाला जाना मेरी जानकारीमें नहीं। आश्रम अिस धर्मको मानता है। फिर भी यह दुःखकी बात है कि अिसे अमलमें लानेमें आश्रम बहुत कच्चा है। अिस धर्मको

पालनेकी कला अभी हाथ नहीं लगी है। सम्भव है कि अुसके पालनमें बहुतसे लोगोंको अपने प्राण गँवाना होंगे, तभी यह हाथ लगेगी। अभी तो यह सिर्फ़ मनोरथके रूपमें है। बहुत समयसे यह धर्म मान लिया जानेपर भी अुसका पालन मन्द है। अिसका मुख्य कारण मैं यह मानता हूँ कि धर्मको स्वीकार करनेवाले आलस्यके मारे या दूसरे कारणोंसे अपने आपको धोखा देते हैं।

पागल कुत्तेको मार डालनेका आश्रममें रिवाज है। अैसा अवसर मेरी जानकारीमें अेक ही बार आया है। अैसा करनेमें ख़याल यह रहा है कि पागल कुत्ता तकलीफ़ पा-पाकर मर ही जाता है। वह अच्छा नहीं हो सकता। वह दूसरी जगह जहाँ भी पहुँचता है, वहीं लोग अुसे मार डालनेके बजाय पीड़ा पहुँचाते हैं, और वे अहिंसाधर्मका पालन करते हैं यह मानकर अपनेको धोखा देते हैं। मेरे ख़यालसे तो वे ज्यादा हिंसा करते हैं। अैसा समझकर आश्रमने पागल कुत्तोंको मार डालना धर्म माना है।

किसी प्राणीको देहमुक्त करनेमें भी कभी कभी अहिंसा हो सकती है, अैसी स्पष्ट मान्यतासे आश्रममें अेक बछड़ेका देहान्त किया गया। यह अेक मशहूर मिसाल है। अिस बछड़ेका पैर टूट गया था। अुसमें घाव हो गये थे, कीड़े पड़ गये थे। न अुसे अुठाया जा सकता था और न कोअी दूसरी राहत पहुँचाअी जा सकती थी। अितना बड़ा जानवर था कि मनुष्यसे न अुसकी करवट बदली जा सकती थी और न अुसे गोदमें अुठाया जा सकता था। अुसे शरीरसे मुक्त न किया जाता तो यही होता कि वह कष्ट पाता रहता और हम देखा करते। यह आशा न थी कि वह बछड़ा बहुत दिन लेगा। अैसी हालतमें मुझे लगा कि अुसकी जान ले लेनेमें दया है। अैसे दुखियाकी पीड़ाको लम्बानेमें मुझे धर्म न जान

पड़ा। जहाँ अपना स्वार्थ न हो, जहाँ प्राणीका ही स्वार्थ देखा जाय, वहाँ मुझे स्पष्ट लगा कि प्राण लेना धर्म हो सकता है। अिसकी लम्बी चर्चा आश्रमवासियोंमें की गयी। कितनों ही ने विरोध भी प्रगट किया था। मगर अन्तमें प्राण लेनेका निश्चय हुआ। मैंने मशहूर सेठ अंबालाल साराभाअीकी मदद माँगी। अुनके यहाँ जो बन्दूकवाले सिपाही थे, अुन्हें भेजनेका कहा। अुन्होंने चमड़ीके ज़रिये ज़हरकी पिचकारी लगाकर प्राण लेनेका अुपाय ज्यादा पसन्द किया। मैंने अिसका समर्थन किया। अुनके डाक्टरने आकर ज़हर देकर थोड़े ही पलोंमें काम पूरा किया। मैं सारे समय मौजूद था। यह लिखते वक्त भी विचार करते हुअे मुझे किसी किस्मका पछतावा नहीं है। बल्कि मेरा विश्वास है कि यह पुण्यका काम था। बहुतसे हिन्दुओंके दिलको अुससे चोट पहुँची थी। यह पढ़कर भी चोट पहुँच सकती है। मुझे लगता है कि अैसे आघातके पीछे हमारा अहिंसाके स्वरूपका अज्ञान है। अिस वक्त यह जीताजागता धर्म नहीं रहा। अहिंसाका रिवाज पड़ गया है। अुसीके अनुसार बग़ैर सोचे जहाँ तक अपनेको बहुत दिक्कत महसूस न हो वहाँ तक हिन्दुस्तानके हिन्दू अपना आचरण करते हैं। अिस बछड़के विषयकी और अिससे पैदा होनेवाले कअी सवालोंकी पूरी चर्चा 'नवजीवन'[८] में हो चुकी है।

अितना कह कर मैं मनुष्यके सिवा दूसरे जीवोंके सम्बन्धमें अहिंसाके जो प्रयोग आश्रममें हुअे अुनकी चर्चा पूरी करता हूँ।

आश्रमके ख़यालसे अिस जीवदयामें रहनेवाली अहिंसा अुस व्यापक धर्मका बड़ा किन्तु अेक ही अंग है। अुससे भी बड़ा अंग अिन्सानोंका अेकदूसरेके साथका व्यवहार है। मामूलीसे

मामूली व्यवहार या तो अहिंसक होगा या हिंसक। सौभाग्यसे अहिंसा व्यापक धर्म होनेके कारण मनुष्य अुसका पालन सहज ही करता है। अगर अेकदूसरेको निभा न लिया जाता, तो मनुष्य जातिका कभीसे नाश हो गया होता। अैसे महान अवलोकनोंसे हम अहिंसाधर्म साबित कर सकते हैं। मगर अिससे अुसके पालनका यश हम नहीं ले सकते।

जहाँ जहाँ हमारा क्षणिक स्वार्थ बाधक होता है, वहाँ वहाँ हम अक्सर जानबूझ कर हिंसाका रास्ता अपनाते हैं। और यह कुटुम्बमें, गाँवमें, देशमें और अलग अलग धर्मोंके सम्बन्धमें समय समयपर देखा जाता है। अहिंसाका ज्ञानपूर्वक पालन मनुष्यको नया जन्म देता है, अुसे बदलता है। यह कठिन धर्म जानबूझकर पालनेकी आश्रममें कोशिश है। अिसमें सैकड़ों रुकावटें आती हैं, निराशाअें पैदा होती हैं, कअी बार श्रद्धाकी परीक्षा होती है। आपसके बर्तावमें आचार शुद्धिसे ही सन्तोष नहीं रहता। किसीके लिअे ख़राब विचार न करना, अुसने हमारा बहुत नुकसान किया हो तो भी अुसका बुरा न चाहना, अुसे विचारमें भी दुःख न देना — यह बड़ा मुश्किल है। मगर अहिंसाके पालनकी कसौटी यही है।

आश्रममें चोर आये हैं, चोर पैदा हुअे हैं। अुन्हें सज़ा देनेकी नीति नहीं रखी गयी; पुलिसको ख़बर नहीं दी जाती; अुनके अुत्पातोंको यथाशक्ति बर्दाश्त किया जाता है। अिस नियमका सदा पूरी तरहसे पालन नहीं किया गया। अेक बार दिनमें चोरी करते हुअे चोर पकड़ा गया था। जिसने अुसे पकड़ा अुसने अुसे बाँध दिया, अुसका अपमान तो किया ही। मै अुस दिन आश्रममें था। मैं अुसके पास गया, अुसे अुलाहना दिया और छोड़ दिया। मगर असलमें देखा जाय तो अिससे अहिंसा-

वादीका धर्म पूरा नहीं होता। अैसे अुत्पातोंको रोकनेके लिअे काफ़ी अुपाय खोजना और करना चाहिये। अेक अुपाय तो है आश्रमके परिग्रह और भोगविलासको कम किया जाय, ताकि किसीको वहाँसे कुछ लेनेका लालच न हो। दूसरा अुपाय यह है कि आसपासके गाँवोंमें शुद्ध आचरणका प्रचार किया जाय। और तीसरा यह कि आश्रमकी सेवा अितनी व्यापक होनी चाहिये कि भलेबुरे सभीमें यह भावना पैदा हो कि आश्रम हमारा है।

अिसपरसे देखा जा सकता है कि परिग्रहीके लिअे स्थूल अहिंसाका भी पूरा पालन असम्भव-सा है। जो अपनी जायदाद रखता है, वह अुसकी रक्षाका भी अुपाय करेगा ही। अुसमें कहीं न कहीं सजाकी गुंजायश ज़रूर रहेगी। जो सब चीज़ोंसे अपनापन हटाकर अुदासीन होकर व्यवहार करता है, वही स्थूल अहिंसाका पूरा पालन कर सकता है। जिस समाजमें अैसे आदमी या अैसी संस्थाअें ज्यादा होंगी, वहाँ हिंसक अुपाय कमसे कम काममें लाना सम्भव होगा। जैसे हिंसापर रचे हुअे समाजमें गोला बारूदका बड़ा स्थान होता है और अुसका अिस्तेमाल जाननेवाला अच्छा सिपाही समझा जाता है और अिनामोंका हक़दार होता है, वैसे ही जहाँ समाज रचना अहिंसापर होती है, वहाँ गोला बारूदकी जगह तप और संयम लेते हैं और अुनसे काम लेनेवाला सिपाही समाजकी रक्षा करता है। अैसे धर्मको दुनियाने अभी तक स्वीकार नहीं किया है। हिन्दुस्तानमें थोड़ा बहुत स्वीकार किया गया है, मगर कह नहीं सकते कि वह व्यापक रूपमें स्वीकार हुआ है। आश्रममें यह विश्वास है कि अैसी अहिंसा व्यापक होनी चाहिये, वह हो सकती है, समाजकी रचना भी अुसपर हो सकती है। और अिसी विश्वासके आधारपर प्रयोग हो रहे हैं। अभी तो यही

कहा जायगा कि सफलता थोड़ी मिली है। अैसी मिसालें मैं अिस प्रकरणमें नहीं दे सका हूँ, जिनसे अहिंसाके पुजारीको आश्वासन मिले। राजनीतिक क्षेत्रमें अहिंसाका जो प्रयोग हुआ है, अुसे मैं अिसमें नहीं गिनता। अुस प्रयोगके लिअे अलग प्रकरण[७] होगा।

ब्रह्मचर्य

१९–६–'३२

अहिंसाकी तरह यह व्रत कअी तरहके धर्मसंकट और पहेलियाँ पैदा करनेवाला नहीं है। आम तौरपर अिसका अर्थ सब समझते हैं। मगर अर्थ जानते हुअे भी अिसका अमल करनेमें बहुतोंका खून पानी हुआ है, और बहुतेरे कोशिश करनेपर भी आगे नहीं बढ़ सके। कुछ पीछे भी हटे हैं। पूर्णताको कोअी नहीं पहुँचा। सबको अिसका महत्त्व साफ़ मालूम हो गया है। मेरा प्रयत्न १९०६के पहले शुरू हुआ। मैंने व्रत १९०६ में लिया। बहुत अुतारचढ़ाव आये। ब्रह्मचर्यका सूक्ष्म अर्थ मैं अनुभवसे, ठोकरें खाकर ही जान सका। अिसका अर्थ समझनेपर देखा कि पुस्तकमें पढ़ा हुआ अर्थ भी अनुभव किये बिना न समझनेके बराबर ही है। अनुभव होनेके बाद यही अर्थ दूसरी तरह समझमें आता है। चरखे-जैसा निहायत सादा यंत्र चलानेकी शिक्षा पढ़ लेना अेक बात है और अुसपर अमल करना दूसरी ही बात। अमल शुरू करते ही नयी रोशनी पड़ती है। और अगर चरखे-जैसी आँखोंको सादी दीखनेवाली चीजके बारेमें यह सही है, तो अप्रत्यक्ष भावोंके बारेमें कितना ज्यादा सही होना चाहिये!

जो मन, वचन और कायासे अिन्द्रियोंको बसमें रखता है, वही ब्रह्मचारी है। अिसका अर्थ अमल करनेपर ही कुछ कुछ

स्पष्ट हुआ, अैसा कहा जा सकता है। पूरी तरह स्पष्ट तो आज भी नहीं हुआ, क्योंकि मैं अपनेको सोलह आने पूर्ण ब्रह्मचारी नहीं मानता। मनके विकार क़ाबूमें रह सकते हैं, लेकिन नष्ट नहीं हुअे। जिसके मनके विचार नष्ट नहीं हुअे, वह पूरा ब्रह्मचारी नहीं गिना जा सकता। जब मैं अुस स्थितिमें पहुँच जाअूँगा, तब अिसी व्याख्याको नयी आँखोंसे देखूँगा। मामूली ब्रह्मचर्य जितना मुश्किल दीखता है, अुतना है नहीं। हमने अुसका अनर्थ करके अुसे कठिन बना दिया है। ब्रह्मचर्यका खेल खेलनेवाले बहुत लोग आगमें हाथ डालकर भी न जलनेकी कोशिश-जैसी कोशिश करते हैं, जलते हैं और फिर व्रतकी कठिनताकी शिकायत करते हैं। यह तो बहुत थोड़े ही समझते हैं कि अेक अिन्द्रियका ही नहीं, बल्कि सभी अिन्द्रियोंका संयम करना है। स्त्रीसंग न करनेमें जो ब्रह्मचर्यका आदि और अन्त मानते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हैं। और ब्रह्मचर्य बड़ा मुश्किल है, अैसा अुनका सबूत मामूली होना चाहिये। दूसरे सब भोग भोगते हुअे जो पुरुष स्त्रीसंगसे दूर रहनेकी अिच्छा रखता होगा, या अैसी कोअी स्त्री पुरुषसंगसे दूर रहना चाहती होगी, अुसकी कोशिश बेकार है। कुअेंमें जानबूझकर अुतरकर भी पानीसे अछूता रहनेके प्रयत्न जैसा ही यह प्रयत्न है। जो स्त्री-पुरुषसंगके त्यागको आसान बनाना चाहते हैं, अुन्हें अुसे अुत्तेजन देनेवाली सभी जरूरी चीजें छोड़नी चाहियें। अुन्हें जीभके स्वाद छोड़ने चाहियें, शृंगाररस छोड़ना चाहिये और विलास मात्र छोड़ना चाहिये। मुझे जरा भी शक नहीं कि अैसे लोगोंके लिअे ब्रह्मचर्य आसान है।

कुछ लोग अैसा मानते हैं कि अपनी या पराअी स्त्रीके लिअे विकारवश होनेमें, अुन्हें विकारी बनकर छूनेमें ब्रह्मचर्यका

भंग नहीं होता । यह भयंकर भूल है । अिसमें स्थूल ब्रह्मचर्यका सीधा भंग है । अिस तरह रमनेवाले स्त्रीपुरुष अपनेको और दुनियाको धोखा देते हैं और दिन दिन शक्तिहीन होते हैं । अैसे स्त्री-पुरुष कअी बीमारियोंके शिकार बनते हैं । अैसे लोगोंकी अन्तिम क्रिया बाक़ी रहती हो, तो अुसका श्रेय अुन्हें नहीं, हालातको है । वे पहले ही मौक़ेपर फिसलनेवाले हैं । यह मैंने अपने और बहुतसे साथियोंके अनुभवसे लिखा है ।

आश्रमके ब्रह्मचर्यमें अपनी पत्नीसे भी संग करनेका त्याग है । अपनी स्त्रीके साथ संग चालू रखकर भी जो परस्त्री-संग छोड़ता है, वह ठीक करता है । अुसका ब्रह्मचर्य सीमित भले ही माना जाय, मगर अुसे ब्रह्मचारी मानना अिस महाशब्दका खून करने बराबर है ।

अिस तरह ब्रह्मचर्यकी व्याख्या तो पूर्ण ही रखी गयी है । फिर भी आश्रममें स्त्री-पुरुष दोनों रहते हैं और अुन्हें अेक-दूसरेके साथ मिलनेकी काफ़ी आज़ादी है । यानी आदर्श यह है कि जितनी स्वतंत्रता माँ-बेटे या बहन-भाअी भोगते हैं, वही आश्रमवासियोंको आपसमें मिल सके । यानी ब्रह्मचर्यके लिअे जिन दीवारोंकी आम तौरपर कल्पना की जाती है, वे सब यहाँ नहीं रखी जातीं । अिसके विपरीत यह माना जाता है कि जिस ब्रह्मचर्यको अिन सब दीवारोंकी हमेशा ज़रूरत हो, वह ब्रह्मचर्य नहीं है । ब्रह्मचर्यके प्रयत्नके लिअे अुस दीवारकी भले ही आवश्यकता मानी जाय, मगर अन्तमें तो वह दीवार टूटनी ही चाहिये । अिसका यह अर्थ नहीं कि दीवार टूटते ही ब्रह्मचारी स्त्रियोंका साथ ढूँढ़ने लगे; परन्तु अिसका अर्थ यह है कि स्त्रीसेवाका प्रसंग आवे, तब वह यह मानकर कि अिसके लिअे मनाही है अुससे भाग नहीं सकता ।

ब्रह्मचारीके लिअे स्त्री नरककी खान नहीं है। अुसके लिअे वह अम्बा माता है, जगत जननी है। स्त्रीपर नज़र पड़ते ही या अुसे अचानक या अिच्छापूर्वक सेवाके लिअे छूते ही जिसे विकार हो जाता है, वह ब्रह्मचारी नहीं है। अुसके लिअे सजीव पुतली और काठकी निश्चेष्ट पुतली अेकसी होनी चाहिये। मगर जो स्त्रीका नाम सुनते ही विकारवश होता है और फिर भी ब्रह्मचर्यका पालन करनेको अुत्सुक है, अुसे तो काठकी पुतलीसे भी दूर भागना पड़ेगा।

अूपरके अनुसार स्त्रीपुरुष अेक ही आश्रममें रहें, साथ काम करें, अेक दूसरेकी सेवा करें और ब्रह्मचर्य रखनेकी कोशिश करें, तो अिसमें डर बहुत हैं। अिसमें अेक हद तक पश्चिमकी जानबूझ कर नक़ल है। अिस तरहके प्रयोग करनेकी अपनी योग्यतामें भी मुझे शक है। मगर यह तो मेरे सारे प्रयोगोंके बारेमें ही कहा जा सकता है। यह शंका बहुत जोरदार है, अिसीलिअे मैं किसीको अपना शिष्य नहीं मानता। समझबूझकर जो आश्रममें आये हैं, वे सब जोखमोंको जानते हुअे भी साथीके रूपमें आश्रममें आये हैं। लड़कों और लड़कियोंको मैं अपने बच्चे मानता हूँ। अिसलिअे वे सहज ही मेरे प्रयोगोंमें घसीटे जाते हैं। सब प्रयोग सत्यरूपी परमेश्वरके नामपर हैं। वह कुम्हार है और हम अुसके हाथमें मिट्टी हैं।

आज तकके आश्रमके अनुभवसे कह सकता हूँ कि जो जोखम अुठाकर ब्रह्मचर्य पालनेकी कोशिश जारी है, अुसमें निराशाका कारण नहीं मिला है। स्त्रीपुरुष दोनोंको कुल मिलाकर लाभ ही हुआ है। मगर मेरा विश्वास है कि सबसे ज्यादा फायदा स्त्रियोंको हुआ है। प्रयोग करनेमें कुछ स्त्रीपुरुष नाकामयाब रहे हैं, कुछ गिरकर अुठे हैं। प्रयोग मात्रमें ठोकर, ठेस तो खानी ही होती

है। जिसमें सोलहों आने सफलता है, वह प्रयोग नहीं। वह तो सर्वज्ञका स्वभाव कहा जायगा।

जिसका दर्जा पहला है, अुसका जिक्र मैंने आखिरके लिअे रखा है। गीताके दूसरे अध्यायमें कहा है कि 'निराहारीके विषय तब तक भले ही दब गये दीखें, जब तक निराहार जारी रहे। मगर अुसका रस नहीं मिटता। वह तो तभी मिटेगा जब परंके यानी सत्यके यानी ब्रह्मके दर्शन हो जायँगे।' अिसमें निराहारीके बजाय संयमी शब्द समझना चाहिये, यानी वह सब अिन्द्रियोंके लिअे लागू होगा। अिस श्लोकमें अनुभवी कृष्णने पूर्ण सत्य कह दिया है। अुपवाससे लगाकर जितने संयमोंकी कल्पना की जा सकती हो, वे सब अीश्वरकी कृपाके बिना बेकार हैं। सत्य या ब्रह्मके दर्शनके क्या मानी? अिसमें अिन आंखोंसे देखनेकी बात नहीं। कोअी चमत्कार देखनेकी बात भी नहीं। ब्रह्मका दर्शन याने ब्रह्म हृदयमें निवास करता है अैसा अनुभव ज्ञान। यह न हो तब तक रस नहीं मिटता। अिसके आते ही रसमात्र सूख जाते हैं। अिस ज्ञानकी खातिर ही सारे व्रत हैं, सारी साधना है, आश्रमोंकी रचना है। यह ज्ञान लगातार अभ्याससे ही होता है। आशिक़ माशूक़की खातिर बर्बाद होता देखा गया है। मगर चूँकि वह क्षणभरके भोगके लिअे पचता है, अिसलिअे अन्तमें अुसके भाग्यमें धूलकी धूल ही रहती है। मगर जिस लगनके साथ प्रेमी मेहनत करता है, अुससे भी ज्यादा लगन सत्यके दर्शनके लिअे चाहिये। और सत्यके दर्शनके अन्तमें परमानन्द है। फिर भी आशिक़की-सी लगन थोड़े ही जिज्ञासुओंमें पायी जाती है। तब अगर वह दर्शन दुर्लभ हो तो शिकायत कैसी? माशूक़ हज़ारों कोस दूर भी हो सकता है। ब्रह्म तो हृदयमें ही है। अंगुलीसे नाखून

जितना अलग है, ब्रह्म तो अुतना भी अलग नहीं है। मगर जहाँ लड़का बगलमें और ढिंढोरा शहरमें हो, वहाँ क्या कहा जाय?

निराहारीका ब्रह्मचर्य फेंक देने लायक नहीं। अुसके रस अन्तमें क्षीण होते हैं। अुपवास करके, अुलटे सिर लटककर, हाथ सुखाकर, पैर सुखाकर — किसी भी तरह विषयोंकी निवृत्ति करनी ही है। अैसा करते करते सम्भव है रस लगभग मिट जायँ। अितनेमें ब्रह्मके दर्शन होंगे, और रसमात्र हमेशाके लिअे चले जायँगे। जिसे हमने खोया हुआ रत्न मान लिया है, वह मिल जायगा। जिसने मरते दम तक कोशिश न की हो, अुसे ब्रह्मको न देखनेकी शिकायत करनेका हक ही नहीं। ब्रह्मचर्यका पालन भी ब्रह्मको ढूँढ़नेका अेक जरिया है। अुसके बिना ब्रह्म नहीं मिलता और ब्रह्मके मिले बिना ब्रह्मचर्यका पूरा पालन नहीं हो सकता। अिसलिअे यहाँ निराहारकी मनाही नहीं की गयी है, अुसकी मर्यादा बतायी है।

२५-६-'३२

ब्रह्मचर्यके पालनका प्रयत्न आश्रममें छोटेबड़े, पति-पत्नी सभी करते हैं, फिर भी सब अुम्रभर पालनेवाले नहीं हैं। अैसे तो थोड़े ही हैं। लड़के और लड़कियाँ अुमर लायक हो जाते हैं, तब अुन्हें चेता दिया जाता है कि कोअी जबरन ब्रह्मचर्य पालनेके लिअे बँधे हुअे नहीं हैं। जो अुसका तेज सहन न कर सकें, अुन्हें शादी करनेका अधिकार है, और वे माँग करेंगे तो ठीक साथी खोज देनेमें आश्रम मदद करेगा। यह बात अितनी ज्यादा और अितनी बार साफ की गयी है कि अुसे सब अच्छी तरह समझते हैं। नतीजा भी बहुत अच्छा निकला है। नौजवान ज्यादा मात्रामें निभ रहे हैं। कन्यायें खासी अुम्र तक खींच ले जाती हैं। कोअी भी पन्द्रह सालसे नीचे तो ब्याही ही नहीं गयी है।

ज्यादातरकी शादी अुन्नीसके आसपास ही हुअी है। जो आश्रमकी मददसे शादी करना चाहते हैं, अुन्हें निहायत सादगीसे सन्तोष करना पड़ता है। भोज वगैरा नहीं होते। बरातियोंके तौरपर कोअी आ नहीं सकते। ढोल नगाड़ोंकी गुंजायश नहीं। सिर्फ धार्मिक विधि ही होती है। वरकन्या खादीमय होने चाहियें। जेवर अेक भी नहीं। वरकी तरफसे कन्याको कुछ देना नहीं पड़ता। कन्याको माँबाप या संरक्षककी तरफसे पहननेके कपड़ों व चरखे वगैराके सिवा कुछ नहीं दिया जाता। विवाहमें दस रुपयेका भी खर्च नहीं होता। विधि अेक घंटेसे ज्यादाकी नहीं होती। सप्तपदीके वचन वरकन्या मातृभाषामें बोलते हैं, और वे पहलेसे समझे हुअे होने चाहियें। शादीके दिन विवाहकी विधिसे पहले अुपवास रखते हैं, पेड़ोंको पानी पिलाते हैं, गोशालाकी सफाअी करते हैं, जलाशय साफ करते हैं, गीतापाठ करते हैं। कन्यादान करनेवाला भी दान करनेके वक्त तक अुपवास रखता है। अबसे यह भी आग्रह रखा गया है कि आश्रमके मारफत अेक ही जातिके बीच विवाह नहीं कराया जायगा। अुपजातियोंका बन्धन ढीला करनेकी गरजसे आश्रम अुपजातिके विवाहोंको प्रोत्साहन नहीं देता और आश्रममें जो शादी करते हैं, अुन्हें अुपजातियोंसे बाहर जानेका अुत्तेजन दिया जाता है।

अस्तेय और अपरिग्रह

अिन व्रतोंपर ज्यादा लिखनेकी जरूरत नहीं। पाँच बड़े व्रतोंमेंसे ये हैं। जो आत्मदर्शन करना चाहते हैं, अुनके लिअे ये ज़रूरी हैं। अिसलिअे अुन्हें आश्रमके व्रतोंमें स्थान दिया गया है।

२६–६–'३२

अस्तेय: अिस व्रतके पालनके लिअे सिर्फ अितना ही काफी नहीं है कि दूसरेकी चीज़ अुसकी अिजाजतके बगैर न ली जाय। जो चीज़ हमें जिस कामके लिअे मिली हो, अुसके सिवा अुसे दूसरे काममें लेना, या जितने वक्तके लिअे मिली हो अुससे ज्यादा वक्त तक काममें लेना यह भी चोरी ही है। अिस व्रतकी बुनियादमें जो सूक्ष्म सत्य है वह यह कि परमात्मा प्राणियोंके लिअे हमेशाकी ज़रूरतकी चीज़ें ही हमेशा पैदा करता है और देता है। अुससे ज्यादा वह मूलमें पैदा ही नहीं करता। अिसका अर्थ यह हुआ कि अपनी कमसे कम ज़रूरतके सिवा मनुष्य जितना भी लेता है, वह चोरी करता है।

अपरिग्रह: अपरिग्रह अस्तेयका अंग है। गैरज़रूरी चीज़ें जैसे ली नहीं जानी चाहियें, वैसे ही अुनका संग्रह भी नहीं होना चाहिये। याने जिस खुराक या टेबल कुर्सीकी हमें ज़रूरत न हो, अुसका संग्रह करना अिस व्रतका भंग करना है। जिसका कुर्सीके बिना काम हो सकता है, अुसे कुर्सी रखनी ही न चाहिये। अपरिग्रही अपना जीवन हमेशा सादेसे सादा बनाता जाय।

अपरिग्रह और अस्तेय मनकी स्थितियाँ ही हैं। शरीरधारीके लिअे अुनका पूरा अमल नामुमकिन है। शरीर खुद ही परिग्रह है। और जब तक वह है, तब तक दूसरे परिग्रहोंकी आशा रखता ही है। कितने ही परिग्रह अनिवार्य हैं। 'कितने ही' की तादाद भी हर मानसिक स्थितिके अनुसार होगी। जैसे जैसे वह अिन व्रतोंकी तरफ़ मुड़ती जायगी, वैसे वैसे अिन्सान शरीरका मोह छोड़ता जायगा और अपनी ज़रूरतें घटाता जायगा। सबके लिअे अेक ही माप मुक़र्रर नहीं किया जा सकता। चींटीका परिग्रह दूसरा ही होगा।

कि यज्ञका अर्थ शरीर-श्रम ही है। मगर अिस भावमें, कि यज्ञसे पर्जन्य होता है, मुझे शरीर-श्रमका धर्म दीखता है। यज्ञसे बचा हुआ अन्न वही है, जो मेहनत करनेके बाद मिलता है। गुजारेके लायक मेहनतको गीताने यज्ञ कहा है। पोषणके लिअे जितना चाहिये, अुससे ज्यादा जो खाता है, वह चोरी करता है; क्योंकि अिन्सान गुजारेके लायक श्रम भी मुश्किलसे ही करता है। मैं मानता हूँ कि अिन्सानको गुजारेसे ज़्यादा लेनेका हक़ ही नहीं है। और जो मेहनत करते हैं, अुन सबको अुतना लेनेका अधिकार है, जितनेसे शरीर क़ायम रहे।

अिससे कोअी यह न कहे कि अिसमें मेहनतके बँटवारेकी गुंजायश ही नहीं। मनुष्यकी ज़रूरी आवश्यकताओंके लिअे जो भी चीज़ तैयार होती है, अुसमें शरीर-श्रम तो लगता ही है। अिसलिअे श्रम चाहे किसी भी ज़रूरी क्षेत्रमें किया जाय वह रोटी-श्रम ही है। अितनी मेहनत भी सब नहीं करते, अिसलिअे तन्दुरुस्ती बनाये रखनेके लिअे व्यायामके नामसे ख़ास तौरपर शरीर-श्रम करना पड़ता है। जो रोज़मर्राके लायक़ मेहनत खेतीमें करता है, अुसे अलग व्यायामकी ज़रूरत नहीं रहती। किसान तन्दुरुस्तीके दूसरे नियम पाले, तो वह बीमार ही न पड़े।

यह देखा जाता है कि अिस दुनियामें अिन्सानको रोज जितना चाहिये, अुतना कुदरत रोज़ पैदा करती है। अुसमेंसे अगर कोअी अपनी ज़रूरतसे ज्यादा काममें लेता है, तो अुसके पड़ोसीको भूखा रहना ही पड़ेगा। बहुत लोग अपनी आवश्यकतासे अधिक लेते हैं, अिसीलिअे दुनियामें भूखों मरनेकी नौबत आती है। हम कुदरतकी देनको किसी भी तरह काममें लें, फिर भी कुदरत तो दोनों पलड़े बराबर रखती ही है। कुदरतके बहीखातेमें न जमा

बाकी है, न नामे बाकी। वहाँ तो रोज़ आमदखर्च बराबर होकर शून्य बाकी रहता है। अिस शून्यमें हमें शून्यके समान होकर समा जाना है।

अूपरके नियममें यह बात बाधक नहीं है कि कअी रसायनों और यंत्रोंके ज़रिये मनुष्य ज़मीनसे ज्यादा फ़सल पैदा करता है, मेहनतसे दूसरी तरह अनेक वस्तुयें अुत्पन्न करता है। यह कुदरतकी शक्तियोंका रूपान्तर है। सबका आखिरी नतीजा तो शून्य ही होनेवाला है। ये रोजके आँकड़े मिलानेके लिअे हमारे पास काफ़ी साधन नहीं हैं। मगर जो कुछ हमें रोज अनुभव होता है, अुसीका पृथक्करण किया जाय, तो अुससे यही अनुमान होता है कि दोनों पलड़े बराबर हैं।

कुदरत अैसा करती हो या नहीं, मेरी दूसरी दलीलोंमें सार हो या न हो, आश्रममें रोटी-श्रमके नियमका अधिकाधिक पालन किया गया है। अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं। अमल करनेका साधारण आग्रह हो तो अमल आसान है। अगर कुछ ख़ास घण्टोंमें मज़दूरीके सिवा दूसरा काम ही न हो, तो मज़दूरी होगी ही। फिर भले ही अुसमें आलस्य हो, कार्यदक्षता न हो, मन न हो। मगर कुछ घण्टे पूरे तो होंगे ही। फिर, कुछ मज़दूरियाँ तुरन्त फल देनेवाली होती हैं, अिसलिअे बहुत आलस्यकी गुंजायश भी नहीं रहती। श्रमप्रधान संस्थाओंमें नौकर होते नहीं या थोड़े ही होते हैं। पानी भरना, लकड़ी फाड़ना, दियाबत्ती तैयार करना, पाखाने और रास्ते साफ करना, मकानोंकी सफाअी रखना, अपने अपने कपड़े धोना, रसोअी करना वग़ैरा अनेक काम तो अैसे हैं जो होने ही चाहियें।

अिनके सिवा खेती, बुनाअी, अुनके सम्बन्धका और दूसरी तरह ज़रूरी बढ़अीका काम, गोशाला, चमारखाना वगैरा काम आश्रमके साथ मिले हुअे हैं। अुनमें थोड़े बहुत आश्रमवासियोंके लगे बिना काम नहीं चल सकता।

ये सब काम रोटी-श्रमके नियमकी पाबन्दीके लिअे काफी माने जायँगे। मगर यज्ञका दूसरा हिस्सा परमार्थ या सेवाकी वृत्ति है। अुसे अिन कामोंमें दाखिल करते वक़्त आश्रमकी खामी जरूर मालूम होगी। आश्रमका आदर्श सेवाके लिअे ही जीना है। अिस ढंगसे चलनेवाली संस्थामें आलस्यका, कामकी चोरीका स्थान नहीं है। वहाँ सब काम तनमनसे होने चाहियें। अैसा सभी करते होते तो आज आश्रमकी सेवाकी योग्यता बहुत बढ़ गयी होती। लेकिन अैसी सुन्दर स्थितिसे आश्रम अब भी बहुत दूर है। अिसलिअे यद्यपि आश्रमका हर काम यज्ञरूप है, फिर भी आदर्शका विचार करके दरिद्रनारायणके लिअे कमसे कम अेक घण्टेकी कताअीको जरूरी स्थान दिया गया है। यह कताअी जिनका शरीर काम कर सकता है, अुन सबके लिअे लाजिमी है। अिस हालत तक पहुँचनेमें काफी मेहनत पड़ी है। लेकिन अिसका वर्णन खादीके कामका विचार करते समय ज्यादा ठीक रहेगा।

यह आरोप समय समयपर सुना गया है और अब भी सुना करता हूँ कि श्रमप्रधान संस्थामें बुद्धिके विकासकी गुंजायश नहीं रहती। अिसलिअे वह जड़ बन जाती है। मेरा अनुभव अिससे अुलटा है। आश्रममें जितने भी आये हैं, सभीकी बुद्धि कुछ तेज हुअी है, किसीकी भी मन्द हुअी हो यह नहीं मालूम हुआ।

२७-६-'३२

अक्सर यह अर्थ किया जाता है कि जगतकी अनेक घटनाओंका माना हुआ बाहरी ज्ञान ही बुद्धि है। मुझे यह मानना पड़ेगा कि अैसी बुद्धि आश्रममें कम विकसित होती है। लेकिन अगर बुद्धिका अर्थ समझ, विवेक वगैरा हो, तो वह आश्रममें काफी विकसित होती है। जहाँ मज़दूरके रूपमें मेहनत सिर्फ गुजारेके ख़ातिर होती है, वहाँ मनुष्यका जड़ बन जाना मुमकिन है। अमुक चीज़ किस लिअे या किस तरह होती है, अिस बारेमें अुसे कोअी ज्ञान नहीं देता, अुसे खुद जिज्ञासा नहीं होती, अपने काममें दिलचस्पी नहीं होती। आश्रममें अिससे अुलटा होता है। हर काम — पाख़ाना सफाअी तक — समझकर करना पड़ता है। अुसमें दिलचस्पी रखी जाती है। वह परमेश्वरकी ख़ातिर होता है। अिसलिअे अुसे करते हुअे भी बुद्धिके विकासकी गुंजायश रहती है। सबको अपने अपने विषयका पूरा ज्ञान प्राप्त करनेका प्रोत्साहन दिया जाता है। जो यह ज्ञान लेनेकी कोशिश नहीं करते, अुनके लिअे वह दोष माना जाता है। आश्रममें सभी मज़दूर हैं या कोअी भी मज़दूर नहीं।

यह मानना कि किताबोंसे ही, मेज़ कुर्सीपर बैठनेसे ही ज्ञान मिलता है, बुद्धिका विकास होता है, घोर अज्ञान है, वहम है। अिसमेंसे हमें तो निकल ही जाना चाहिये। जीवनमें अध्ययनके लिअे स्थान ज़रूर है, मगर वह अपनी जगहपर ही शोभा देता है। शरीरश्रमको हानि पहुँचाकर अुसे किया जाय तो अुसके ख़िलाफ़ विद्रोह करना फ़र्ज़ हो जाता है। शरीरश्रमके लिअे दिनका ज्यादा वक्त देना चाहिये और पढ़ाअी वगैराके लिअे थोड़ा। आजकल अिस देशमें जहाँ अमीर लोग या अूँचे वर्णके माने

जानेवाले लोग शरीरश्रमका अनादर करते हैं, वहाँ शरीरश्रमको अूँचा दरजा देनेकी बड़ी जरूरत है । और बुद्धिशक्तिको सच्चा वेग देनेके लिअे भी शरीरश्रमकी यानी किसी भी अुपयोगी शारीरिक धन्धेमें शरीरको लगानेकी जरूरत है ।

अगर पढ़ाअीको आश्रम कुछ ज्यादा वक्त दे सके, तो देने लायक है । बेपढ़े आश्रमवासियोंको शिक्षककी मदद मिल सके, तो वह भी दी जानी चाहिये । फिर भी अैसा लगता रहा है कि जो जो काम आश्रममें हो रहे हैं, अुनको नुक़सान पहुँचाकर पढ़ाअी वग़ैरामें वक़्त न लगाया जाय । शिक्षक तनख़ाहदार तो रखे नहीं जाते । और जब तक मौजूदा शिक्षा देनेवाले ज्यादा शिक्षकोंको आश्रम अपनी तरफ़ खींच न सके, तब तक जितने हैं अुन्हींसे काम चलाया जाता है । स्कूलों और कालेजोंमें पढ़े हुअे जो लोग आश्रममें हैं, वे श्रमके साथ पढ़ाअीको मिला देनेकी कलामें पूरी तरह दक्ष नहीं हैं । हम सबके लिअे यह नया प्रयोग है । मगर अनुभवसे समतोल बढ़ता जा रहा है । और जैसे जैसे व्यवस्थाशक्ति बढ़ती जायगी, वैसे वैसे अभी जो साधारण शिक्षा पाये हुअे हैं, अुन्हें अपनी मेहनतसे पाया हुआ ज्ञान दूसरोंको देनेका अुपाय सूझ पड़ेगा ।

स्वदेशी

स्वदेशीको आश्रम सार्वभौम धर्म मानता है । हर अिन्सानका पहला फ़र्ज़ अपने पड़ौसीके प्रति है । अिसमें परदेशीके प्रति द्वेष नहीं और स्वदेशीके लिअे पक्षपात नहीं । शरीरधारीकी सेवा करनेकी शक्तिकी मर्यादा होती है । वह अपने पड़ौसीके लिअे भी मुश्किलसे फ़र्ज़ पूरा कर सकता है । अगर पड़ौसीके प्रति सब अपना धर्म

ठीक ठीक पालन कर सकें, तो दुनियामें कोअी मददके बिना दुःख न पाये। अिसलिअे यह कहा जा सकता है कि मनुष्य पड़ौसीकी सेवा करके दुनियाकी सेवा करता है। असलमें तो अिस स्वदेशीमें अपने परायेका भेद ही नहीं। पड़ौसीके प्रति धर्मपालन करनेका अर्थ है जगतके प्रति धर्म पालन। और किसी तरह दुनियाकी सेवा हो ही नहीं सकती। जिसके ख़यालमें सारा जगत ही कुटुम्ब है, अुसमें अपनी जगहपर रहकर भी सबकी सेवा करनेकी शक्ति होनी चाहिये। वह तो पड़ौसीकी सेवाके ज़रिये ही हो सकती है। टॉल्स्टॉय तो अिससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि अभी तो हम अेक दूसरेके कन्धेपर चढ़ बैठे हैं। हम दूसरेके कन्धेसे अुतर जायँ तो बस है। यह कथन अुसी बातको दूसरी तरह बताता है। अपनी सेवा किये बिना कोअी दूसरेकी सेवा करता ही नहीं। और दूसरेकी सेवा किये बिना जो अपनी ही सेवा करनेके अिरादेसे कोअी काम शुरू करता है, वह अपनी और संसारकी हानि करता है। कारण स्पष्ट है। हम सभी जीव अेक दूसरेके साथ अितने ज्यादा मिले हुअे हैं कि जो कुछ अेक करता है अुसका अच्छा बुरा असर सारे जहानपर पड़ता ही है। हमारी तंग नजरके कारण भले ही हम देख न सकें, भले ही अेक व्यक्तिके कामका असर अिस संसार-सागरमें नहीं के बराबर हो, मगर वह होता है ज़रूर। हमें अपनी ज़िम्मेदारी समझनेके लिअे अितना ज्ञान काफ़ी होना चाहिये।

अिसलिअे शुद्ध स्वदेशी धर्म विदेशीके विरुद्ध नहीं। फिर भी स्वदेशी सर्व देशी नहीं। नहीं, अिसलिअे कि अैसा होना असम्भव है। 'सब' का करने जायँ तो वह तो होता नहीं और 'अपना' भी जाता रहता है। अपना करते रहनेमें सबका होता ही रहता है।

सबका करनेका अेक यही अुपाय है । 'मेरे लिअे सब बराबर हैं,' यह कहनेका अधिकार अुसीको है, जिसने पड़ौसीके प्रति अपना धर्म पाला हो । 'मेरे लिअे सब बराबर हैं,' यह कहकर जो पड़ौसीका तिरस्कार करता है और अपने शौक़ पूरे करता है, वह स्वेच्छाचारी है, स्वच्छंद है । वह अपने ही लिअे जीता है ।

हम कितने ही साधु पुरुषोंको अपना स्थान छोड़कर सारी दुनियाका भ्रमण करते और 'परदेशियों' की सेवा करते देखते हैं । वे बुरा करते हैं या स्वदेशी धर्मके लिअे अपवाद हैं, सो बात नहीं । अुनकी शक्ति अुनके हाथसे ज्यादा सेवा कराती है । किसी अिन्सानके लिअे अुसके पास रहनेवाला आदमी ही पड़ौसी है । दूसरेकी मर्यादा अपने गाँव तक होती है । तीसरेकी अपने आसपासके दस गाँवों तक जा सकती है । अिस तरह सब अपनी अपनी ताक़तके अनुसार काम करेंगे । साधारण मनुष्यकी पहुँच साधारण ही होती है । व्याख्या अैसी ही रची जानी चाहिये जो अुसे लागू की जा सके । अिस व्याख्याके भावार्थमें वे सब बातें समा सकती हैं, जो अुसके शब्दार्थके विपरीत न हों । साधारण आदमी यह नहीं मानता कि वह स्वदेशीका पालन करके किसीकी सेवा करता है । अपने पड़ौसीके साथ वह व्यापार अिसलिअे करता है कि अुसमें अुसे सुविधा रहती है । यह मानना सही ही है । परन्तु अिस सुविधामें कअी बार अड़चन भी पाअी जाती है । जो स्वदेशीको धर्म समझता है, वह वैसे समयमें भी अुसका पालन करेगा । आजकल बहुतोंको अपने देशकी ही बनी हुअी चीज़ोंसे सन्तोष नहीं होता । कअी तरहके प्रलोभन दिखाअी देते हैं, अिसलिअे बहुत लोग विदेशी चीज़ें लेनेमें अपनी सुविधा देखते हैं । अैसे समय बताना पड़ता है कि स्वदेशी सहूलियत

ही नहीं, धर्म भी है। आज हिन्दुस्तानमें अैसी ही हालत है। अिसी लिअे यहाँ स्वदेशी धर्म जाननेकी ज़रूरत पैदा हुअी है। स्वदेशीका हिंसक अर्थ, दूसरे देशोंकी जनताके द्वेषका अर्थ, बिलकुल त्याज्य है। किसीका बुरा करना या चाहना धर्म हो ही नहीं सकता।

अिस स्वदेशी धर्मका पालन आश्रमके व्रतोंमेंसे अेक है।

अिस स्वदेशीका साकार रूप मैंने खादीको माना है, क्योंकि अिसे छोड़कर ही हिन्दुस्तानने घोर पाप किया है; अपना स्वाभाविक धर्म छोड़ दिया है। खादीकी आवश्यकताके बारेमें दूसरे स्थानपर और दूसरे समय बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ तो अितना ही बतलानेके लिअे ज़िक्र किया गया है कि अुसका आश्रमके साथ सम्बन्ध कैसे हुआ। लेकिन अिस ज़िक्रमें खादीके कामकी शुरूआतका अितिहास आ जाता है।

सन् १९०८में मुझे खादी-धर्म और चरखा-धर्म सूझा। अुस वक़्त मुझे ख़याल भी न था कि चरखा कैसा होता है। मैं चरखे और करघेका फ़र्क़ नहीं जानता था। हिन्दुस्तानके गाँवोंकी हालतका मुझे थोड़ा ही ज्ञान था। मगर यह मैं साफ़ देख सका था कि हिन्दुस्तानके देहातोंके कंगाल होनेका मुख्य कारण चरखेका नाश है। मेरे मनमें गाँठ बैठ गयी थी कि हिन्दुस्तान जाअूँगा तब चरखेका प्रचार करूँगा।

१९१५में जब मैं देशमें आया, तब मनमें यह विचार तो भरा ही था। आश्रम क़ायम हुआ तभीसे स्वदेशी व्रत शुरू हुआ। पर हममें कोअी यह न जानता था कि सूत कैसे कातते हैं। अिसलिअे हाथका करघा लगाकर सन्तोष किया। सबके दिलोंसे बारीक कपड़ेका मोह मिटा नहीं था। स्त्रियोंकी साड़ी बुनने लायक़ स्वदेशी सूत तो मिलता ही न था। अिसलिअे

बहुत थोड़े समयके लिअे विदेशी सूतसे बुनाअी करते थे। कुछ बारीक सूत देशी मिलका लिया और विदेशीको बिदा किया।

आश्रममें करघा बैठानेमें भी मुश्किल तो खूब थी ही। हमें किसीको बुननेका ज्ञान नहीं था, मित्रोंके जरिये करघा जुटाया और सिखानेवाला जुलाहा खोजा। सीखनेका भार मगनलाल पर आया।

जैसे जैसे मैं आश्रममें प्रयोग करता रहा, वैसे वैसे देशमें स्वदेशीका प्रचार भी करता रहा। लेकिन जब तक सूत न कते तब तक सब मामला दूल्हे बिना बरातवाला ही लगा। अन्तमें चरखा मिला, कातनेवाली मिलीं और चरखा आश्रममें जारी हुआ। यह हक़ीकत 'सत्यके प्रयोग' में आ गयी है।[८]

कोअी यह न समझे कि चरखा मिलते ही सब मुश्किलें दूर हो गयीं। यह भी कहा जा सकता है कि मुश्किलोंका बारीक ज्ञान हुआ, जिससे छुपी हुअी मुश्किलें सामने आयीं यानी बढ़ीं।

देशमें घूमते वक़्त देखा कि चरखेकी बात करते ही लोग अुसे अपना लें सो बात नहीं। यह पता था कि अुससे कमाअी थोड़ी ही होती है, मगर यह पता न था कि कितनी कम होती है। अुसमेंसे सूत अेकसा और बारीक तुरन्त नहीं निकलता। बहुतसी स्त्रियाँ तो मोटापतला ही निकालेंगी। फिर यह भी देखा कि वह कच्चा होता है। चाहे जैसी रूअीसे काम नहीं चलता। अुसे पींजना पड़ता है, पूनियाँ बनानी पड़ती हैं। मगर पींजनेका आधार भी अिस बातपर है कि रूअी कैसी स्थितिमें मिली है। चरखे भी चाहे जैसे हों तो काम नहीं चलता। अिसलिअे चरखेका पुनरुद्धार होना चाहिये, यानी अेक बड़ी योजना बनानी चाहिये।

अकेला धन काम नहीं आता, अेक दो आदमियोंके बसका भी यह काम नहीं। सैकड़ों सेवक मिलें तभी काम बने। सेवक भी मामूली दर्जेके नहीं चाहियें। वे अैसे होने चाहियें जो नया शास्त्र सीखनेको तैयार हों, थोड़े गुजारेमें सन्तोष करें और देहातका जीवन बितायें। अितना भी काफ़ी नहीं था। देहातियोंमें आलस्य, निराशा और अविश्वास छा गया है। ये न मिटें तो चरखा जारी न हो। अिसलिअे चरखेको सफल करनेके लिअे सेवकों और सेविकाओं दोनोंकी पूरी शक्तिकी ज़रूरत है। और साथ साथ अटूट धीरज और अटल श्रद्धा न हो तो चरखा नहीं चल सकता।

कहना चाहिये कि अिस श्रद्धामें पहले तो मैं अकेला ही था। मगर श्रद्धाके सिवा मेरे पास दूसरी सम्पत्ति नहीं थी। मैंने देखा कि जहाँ श्रद्धा होती है, वहाँ दूसरे सामान अपने आप आ जाते हैं। श्रद्धाके अनुसार ही बुद्धि सूझती है, मेहनत आती है। यह तो साफ़ ही था कि तमाम प्रयोग आश्रममें और आश्रमके द्वारा ही होंगे। आश्रमकी हस्ती ही अिसलिअे थी। मैंने देखा कि आश्रमकी मुख्य बाहरी प्रवृत्ति चरखा ही हो सकता था। चरखेका शास्त्र रचनेका दूसरा अुपाय ही नहीं था। अिसलिअे अन्तमें कातनेकी क्रियाको महायज्ञ माना गया और जो आश्रममें आता, अुसे कातना सीखकर वह यज्ञ तो करना ही पड़ता था।

लेकिन यज्ञका अर्थ है काम करनेमें कुशलता प्राप्त करना। जैसे तैसे कात लेनेका नाम यज्ञ नहीं है। अिसलिअे पहले तो कमसे कम आध घंटे तक कातनेका तय हुआ। लेकिन जल्दी ही मालूम हुआ कि चरखा बिगड़ जाय, तो आध घंटेमें तीन तार भी नहीं निकल सकते। अिसलिअे यह तय हुआ कि कमसे कम १६० तार तो निकलने ही चाहियें। अेक तार यानी ४ फुट सूत।

लेकिन सूत मोटा पतला हो, तो किस कामका? अिसलिअे सूतकी समानता, मजबूती वगैरा पर जोर दिया जाने लगा। और अब तो अिस हद तक पहुँच गये हैं कि बीस नंबरसे कमका सूत हो, तो अुसकी यज्ञमें गिनती नहीं हो सकती।

मगर अच्छेसे अच्छे सूतका अुपयोग कौन करे? मैं तो पहलेसे ही समझता था कि अिस सूतका अिस्तेमाल यज्ञके लिअे कातनेवाले तो हरगिज नहीं कर सकते। मगर यह घूँट मैं सबके गले नहीं अुतार सका। सूतकी मज़दूरी खुद चुका दे और ख़रीद ले तो क्या हर्ज है? अैसा करनेसे अच्छेसे अच्छा सूत कतेगा, अिस लालचसे मैंने मनको यों समझा लिया कि मज़दूरी चुकाकर अपना काता हुआ सूत ख़रीद ले तो भी यज्ञ किया माना जायगा। यह दोष ये पंक्तियाँ लिखते वक्त भी बिलकुल दूर नहीं हो सका है। जो दोष शुरूमें ही नहीं मिट जाता, वह घर कर लेता है। और फिर जैसे घर किये हुअे रोगको दूर करनेमें मुश्किल होती है, वैसी ही अैसे दोषको निकालनेमें भी होती है।

यह कहा जा सकता है कि अिस यज्ञके नतीजेके रूपमें ही चरखेका काम लगभग हिन्दुस्तान भरमें फैल गया है। मगर यह नहीं कहा जा सकता कि अुसने गाँव गाँवमें घर कर लिया है। अिसका कारण मैं तो अच्छी तरह देख सकता हूँ। मेरी श्रद्धाके साथ ज्ञान बिलकुल नहीं था। भूलें करते करते, ठोकरें खाते खाते थोड़ासा ज्ञान मिला। साथी मिले, मगर यह नहीं कह सकते कि अिस महान कार्यके लिअे काफ़ी हैं। सैकड़ों सेवक तैयार हुअे हैं, मगर यह भी नहीं कहा जा सकता कि अुनमें अटूट श्रद्धा या ज्ञान है। जहाँ मूल काम ही अभी कमजोर है, वहाँ पूरे फलकी आशा नहीं रखी जा सकती।

लेकिन अिसमें मेरे ख़यालसे किसीका क़सूर नहीं। नया काम है, महासागर जैसा विशाल है, अुसमें कठिनाअियोंका पार नहीं। अिसलिअे जितना हुआ, अुससे सन्तोष तो नहीं माना जा सकता; फिर भी वह श्रद्धा क़ायम रखनेके लिअे तो काफ़ी ही है। सफलताकी आशा पूरी तरह रखी जा सकती है। अितना ज्ञान मिला है और अितने श्रद्धालु सेवक-सेविकायें पैदा हो गयी हैं कि यह काम अब नष्ट तो नहीं होगा, यह जरूर कहा जा सकता है।

अिस अेक कामके साथ दूसरे छोटे काम आश्रममें और देशमें अितने ज्यादा पैदा हुअे हैं कि अुनका अितिहास लिखें, तो अिस प्रयासकी सीमा लाँघी जा सकती है। मैंने यह नहीं सोचा है कि आश्रमका अितिहास देते हुअे अुसके सभी विभागोंका भी अितिहास देनेका साहस करूँ। लेकिन थोड़ेमें यहाँ बता दूँ कि अुसके सिलसिलेमें कपासकी खेती होती है, बढ़अीख़ाना चलता हैं, रँगाअीका काम होता है, ओटनेसे लगाकर बुनाअी तकके औजार बनते हैं। अुनमें सुधार हुअे हैं और अब भी हो रहे हैं। चरखेकी क़िस्मं सुधारनेमें जो प्रगति हुअी है, वह तो मुझे अेक काव्य-जैसी लगती है।

अछूतपन

सत्यका आग्रह रखनेके लिअे और अुसके लिअे मरना पड़े तो मरनेकी कला सीखनेके लिअे जो आश्रम स्थापित हुआ अुसमें अछूतपनको कलंक मानते हुअे भी अुसे दूर करनेकी रचनात्मक प्रवृत्ति न की जाय, तो फिर वह सत्याग्रह आश्रम कैसे कहला सकता है? अछूतपनको पाप मानना मैं और मेरे

साथी लोग दक्षिण अफ्रीकामें ही सीख गये थे। अिसलिअे यहाँ आश्रम क़ायम होते ही अछूतपनको मिटाना आश्रमका अेक बड़ा काम हो गया।

आश्रम स्थापित होनेके बाद अेक महीनेके भीतर ही दूदाभाअीने कुटुम्ब सहित आश्रममें रहनेकी माँग की। मैं नहीं सोचता था कि अितनी जल्दी आश्रमकी परीक्षा होगी। दूदाभाअीको भरती करनेकी सिफ़ारिश श्री० अमृतलाल ठक्करने की थी। अुनकी सिफ़ारिशवाले परिवारको मुझे अपना ही लेना चाहिये। अिसलिअे मैंने अुसे आनेको ख़त लिख दिया। अिस कुटुम्बके आते ही खलबली मच गयी। पहले तो मैंने देखा कि आश्रममें जो परिवार रहते थे, अुन्हींमें कहीं कहीं अछूतोंके साथ परहेज रहता था। मेरी ही पत्नीमें, हालाँ कि अिस बाबत दक्षिण अफ्रीकामें बहुत कष्ट सहना पड़ा था, छुआछूत बाक़ी थी। मगनलाल-जैसे बहादुर आदमीने देखा कि अुसमें भी गहराअीमें यह दोष रह गया है। अुसकी पत्नीमें तो और भी ज्यादा था। यहाँ तक नौबत आयी कि मेरी पत्नी या तो आश्रम छोड़ दे या आश्रमके कड़े नियमका पालन करे। छुआछूत रखनेवाले सम्बन्धियोंने अुसे समझाया कि पतिके पीछे चलनेवाली स्त्रीको पाप लगता ही नहीं। पर न चलनेसे ज़रूर लगता है। अिस ख़यालने असर किया और वह शान्त हो गयी। मैं खुद यह नहीं मानता कि पत्नीका पतिके पापमें साथ देना किसी भी तरह धर्म है। मगर यहाँ मैंने पत्नीके सहयोगका स्वागत किया, क्योंकि मैं अछूतपन मिटाना पुण्यका काम समझता था। अस्पृश्यता-निवारण आश्रममें रहनेकी अेक लाजमी शर्त थी। अिसलिअे अगर अिस शर्तका पालन न करे, तो मेरी पत्नीको आश्रमके बाहर रहना ही पड़े। यह मेरे लिअे दुःखदायक तो था ही।

जिसने आज तक मेरे सुखदुःखमें बड़ी तकलीफ़ अुठाकर साथ दिया था, अुसका वियोग सहन करना भारी कष्ट था। मगर धर्मपालनके लिअे कैसे भी संकट आयें, अुन्हें सहना ही था। अिसलिअे स्वतंत्र रूपमें नहीं, पर पत्नी-धर्मके नाते पत्नीने जब छुआछूतको छोड़ दिया, तो मुझे अुसे स्वीकार करनेमें संकोच नहीं हुआ।

मगनलालकी परीक्षा मुझसे कड़ी थी। अुसने तो क्षणभरमें आश्रम छोड़नेकी हिम्मत करनेका विचार कर लिया। सामान बाँधकर वह मुझसे अिजाज़त लेने आया। मैं अिजाज़त कैसे देता? मैंने मगनलालको सावधान किया। आश्रम खड़ा करनेमें जितना मेरा हाथ था, अुतना ही अुसका था। अपना रचा हुआ खुद ही कैसे छोड़े? छोड़नेका अर्थ आश्रमका नाश करना था। वह नाश नहीं चाहता था। अपनी बनाअी चीज़को छोड़नेकी अिजाज़त मुझसे क्या लेनी थी? मगर अुससे आश्रम छोड़ा ही नहीं जा सकता था। अितना कहना मगनलालके लिअे बहुत हो गया। यह लिखते वक़्त मुझे अैसा लगता है कि अुसने तो मेरा रास्ता साफ़ करनेके ख़यालसे ही यह कदम अुठाना ठीक समझा होगा। और सबका वियोग बर्दाश्त हो सकता था, मगर मगनलालका वियोग सहन करना मुश्किल बात थी। अिसलिअे मैंने मगनलालको कुटुम्ब सहित मद्रास जानेकी बात कही। वहाँ जाकर दोनों शान्त हों और बुनाअीकी कलाका ज्यादा ज्ञान प्राप्त करें। आश्रममें जो मददगार आये थे, अुन्होंने अेक हदसे आगे सिखानेसे अिनकार कर दिया। अुन्हें यह निरर्थक डर लगा कि अैसा करनेसे अुनका धन्धा खतम हो जायगा। मद्रासमें स्व० त्यागराज चेट्टीने अपने हाथकी बुनाअीके कारखानेमें मणिलाल गांधीको सीखनेके लिअे रख लिया था। मगर मद्रासके कारीगरको भी अहमदाबादमें मिले

कारीगरकी ही तरह वहम था। अिसलिअे कारीगर दिल खोलकर अपनी कारीगरी नहीं सिखाते थे। मगनलालमें वशीकरण शक्ति ज्यादा थी, अुसका ज्ञान भी अधिक था। मैं मानता था कि वह देख देखकर भी बहुत सीख लेगा। अिसके सिवा दक्षिणके साथ सीधा सम्बन्ध भी जोड़ना ही था। मगनलालको मद्रास भेजनेके लिअे अुसके धर्मसंकटका बहाना भी मुझे मिल गया। और मैंने अुसे पकड़ लिया। मगनलालको और अुसकी पत्नीको मेरी सूचना पसन्द आ गयी। वे मद्रास गये और वहाँ कोअी छह मास रहे। बुननेकी कला अच्छी तरह सीख ली और दोनोंने गहरा विचार करके अछूतपनका मैल पूरी तरह निकाल दिया। दोनों अपनेमें आयी हुअी कमज़ोरीको देख सके। वे मद्रासमें ही अछूतोंसे आज़ादीके साथ मिलने लगे, अुनसे दूसरे सम्बन्ध भी जोड़े। काम पूरा होनेपर वे और मणिलाल आश्रम लौट आये।

अिस तरह आश्रमवासियोंमें पैदा हुअी खलबली शान्त हुअी। बाहर भी कम खलबली न थी। जिन्होंने आश्रमको मदद देनेकी प्रतिज्ञा ली थी, अुनमेंसे मुख्य सहायकने तुरन्त मदद बन्द कर दी। कुअेंका पानी न मिलने तकका खतरा आ पहुँचा। मगर अुसे बेखटके पार कर लिया। और रुपये पैसेकी मददके बारेमें 'नरसी मेहताकी हुंडी' सिकारने जैसी घटनाअें हुअीं। न सोची हुअी जगहसे अचानक तेरह हजारके नोट आ पड़े। अिस तरह यह माना जा सकता है कि आश्रमवासियोंने दूदाभाअीको सब संकट सहकर भी निभा लेनेकी जो प्रतिज्ञा की थी, वह भारी संकट अुठाये बिना ही पूरी हुअी। अिस तरह अछूतपन मिटानेके विषयमें आश्रम पास हुआ। अछूत परिवार आज़ादीसे आतेजाते

हैं, और आश्रममें रहते हैं। दूधाभाओकी लक्ष्मी तो अैसी हो गयी, जैसे परिवारकी ही हो।

अछूतोंके तीन धन्धे आश्रममें चलते हैं और अुनमें सुधार हो रहे हैं। आश्रममें रहनेवाले सभीको भंगीका काम तो करना ही पड़ता है। दरअसल अुसे धन्धा नहीं माना जाता, बल्कि हर अेकका फर्ज़ समझा जाता है। अिसलिअे पाखानोंकी सफ़ाअी हाथोंसे ही होती है। वह डॉ० पुरके बताये हुअे तरीक़ेपर होती है। मैला आश्रमकी ज़मीनमें छिछला गाड़ा जाता है। अिससे थोड़े ही दिनमें अुसकी खाद बन जाती है। डॉ० पुरका कहना है कि बारह अिंच तककी ज़मीन ज़िन्दा होती है। अुसमें बेशुमार जीव रहते हैं। अुनका काम मैली जमीनको साफ करना है। वहाँ तक हवा और सूर्यकी किरणें पहुँचती हैं। अिसलिअे वहाँ तक मैला गाड़नेसे वह मिट्टीमें जल्दी मिल जाता है।

पाखाने भी अिस ढंगसे बनाये गये हैं कि अुनमें बदबू न आये और सफ़ाअी करनेमें ज़रा भी मुश्किल न हो। अुपयोग करनेके बाद हर अेक आदमी अुसमें काफ़ी सूखी मिट्टी डालता है — अितनी कि जब देखो तब अूपर सूखा ही नज़र आये।

दूसरा धन्धा बुनाअीका है। मोटी खादी गुजरातमें तो अछूत जुलाहे ही बुनते थे। अुनका धन्धा लगभग नष्ट हो गया था और बहुतेरे भंगीका काम करने लग गये थे। अब अुस धन्धेका जीर्णोद्धार हुआ है।

तीसरा चमारका काम है। यह भी आश्रममें जारी हो गया है। अिसके बारेमें ज्यादा 'गोसेवा'के प्रकरणमें आयेगा।

आश्रममें अुपजातियाँ नहीं मानी जातीं। अेक दूसरेके साथ खानेमें छुआछूत नहीं रखी जाती, अिसलिअे आश्रममें सभी

अेक पंगतमें खाने बैठते हैं । अिस व्यवहारका प्रचार आश्रमके बाहर नहीं किया जाता । अछूतपन मिटानेके लिअे अिस प्रचारकी जरूरत नहीं मानी गयी । अछूतपन मिटानेका अर्थ यह है कि अछूतोंके सार्वजनिक संस्थाओंमें जानेपर जो रुकावटें लगाअी जाती हैं, अुन्हें दूर किया जाय, और अुन्हें छूनेपर जो छुआछूत मानी जाती है, अुसे मिटाया जाय । ये पाबन्दियाँ क़ानूनसे भी हटाअी जा सकती हैं । रोटीबेटीका व्यवहार अलग सुधार है । अिसमें क़ानून या समाज दखल नहीं दे सकते । अिस ख़यालसे आश्रमवासी अपने लिअे सबके साथ खाद्य पदार्थ खानेकी स्वतंत्रता रखते हैं, मगर अैसा करनेका प्रचार नहीं करते ।

आश्रमकी तरफसे अछूतोंके लिअे पाठशालाअें खोलने और कुअें खुदवानेकी कोशिश भी हो रही है । अिसमें आश्रमका खास काम रुपया जमा करना है । अछूतपनके बारेमें आश्रमकी सही प्रवृत्ति तो आश्रमवासीके अपने आचरणको सुधारनेकी है । आश्रममें अूँचनीचपनको कोअी भी स्थान नहीं है ।

अितनेपर भी आश्रम वर्णाश्रमको हिन्दू धर्मका अंग मानता है । मगर वर्णाश्रमका सच्चा अर्थ मामूली अर्थसे अलग तरहका है । चार वर्ण और चार आश्रम सिर्फ हिन्दूधर्मकी ही व्यवस्था हो सो बात नहीं । यह चीज़ मनुष्यमात्रमें है । यह सार्वजनिक नियम है । अुसका भंग करनेसे दुनियामें कअी आपत्तियाँ पैदा हुअी हैं । जैसे वर्ण चार हैं, वैसे ही आश्रम भी चार हैं — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास । ब्रह्मचर्य आश्रमका अर्थ है विद्याभ्यास काल । अिस समयमें विद्यार्थी — स्त्री या पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे, अितना ही काफ़ी नहीं, बल्कि अिस कालमें अुसपर विद्यासंपादनके सिवा दूसरा कोअी भार न होना चाहिये । यह अवस्था

कमसे कम २५ साल तककी मानी गयी है। अुसके बाद ब्रह्मचारीको गृहस्थ जीवनमें प्रवेश करना हो, तो करे। ९९.७५ फ़ी सैकड़ा तो प्रवेश करेंगे ही। मगर यह जीवन ५० वर्षकी अुम्रमें बन्द होना ही चाहिये। अिस कालमें गृहस्थ अपनी विषयतृप्ति करे, धन कमाये, धन्धा करे, सन्तान पैदा करे। बाक़ीके २५ साल पतिपत्नी अलग रहकर सिर्फ़ भलाअीके काम करें, जनताकी सेवा करें, परिवारसे दूर रहकर सारे संसारको परिवार माननेकी कोशिश करें। आख़िरी २५ बरस दोनों संन्यासमें बितायें। अिसमें ख़ास व्यवसायके बजाय दोनों अलग अलग रहकर लोगोंमें धार्मिक जीवनका प्रचार करें, आदर्श जीवन बिताकर लोगोंको आदर्श सिखावें, और खुद सिर्फ़ प्रजाकी दयापर गुजर करें। यह साफ़ मालूम होता है कि अिस तरहसे बहुत लोग चलें, तो समाजकी ज़िन्दगी बहुत अूँचे दर्जेकी हो जाय।

मगर अिस बारेमें अलग अलग राय हो सकती है कि आश्रमकी जो मर्यादा अूपर बताअी गयी है, वही आज भी होनी चाहिये या दूसरी। मुझे मालूम नहीं कि आश्रमव्यवस्था की खोज हिन्दू धर्मके बाहर भी हुअी है। आज तो यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्ममें वह लगभग नष्ट हो गयी है। ब्रह्मचर्य आश्रम-जैसी चीज़ तो कोअी है ही नहीं। और यह तो आश्रमजीवनका आधार है। दूसरे आश्रमोंमें संन्यास आश्रम नामके लिअे ज़रूर पाया जाता है। परन्तु संन्यासियोंमें बहुतसे तो सिर्फ़ वेषधारी रह गये हैं, बहुतसे ज्ञानहीन हैं; और कुछ, जिन्होंने विद्या अच्छी प्राप्त की है, वे ब्रह्मज्ञानी तो नहीं, लेकिन धर्मान्ध हैं। अिनमें कहीं कहीं कोअी चरित्रवान संन्यासी भी ज़रूर देखनेमें आते हैं। मगर संन्यासीके तेजवाले मुश्किलसे नज़र आते हैं। सम्भव है अैसे

लोग छिपे हुअे रहते हों । मगर यह साफ़ साबित है कि संन्यास आश्रमका भी लोप हो रहा है । जिस समाजमें प्रौढ़ संन्यासी विचरते हों, अुस समाजमें धर्मकी, अर्थकी कंगाली नहीं होती, वह पराधीन नहीं होता । आजका हिन्दू समाज धर्महीन, तेजहीन, अर्थहीन और पराधीन है, अिस बारेमें दूसरी राय मैंने नहीं सुनी । मेरी राय तो यहाँ तक है कि संन्यास आश्रम ज़िन्दा होता, तो दूसरे पासवाले धर्मोंपर भी अिन संन्यासियोंका असर पड़े बिना न रहता । संन्यासी हिन्दू धर्मका ही नहीं, सभी धर्मोंका है ।

मगर अैसे संन्यासी ब्रह्मचर्य आश्रमके बिना पैदा ही नहीं हो सकते, वानप्रस्थ तो नामको भी नहीं । बाकी रहा गृहस्थ आश्रम । सो गृहस्थजीवन आश्रमके रूपमें नहीं रहा । वह सिर्फ़ मनमानी करनेका साधन बना हुआ है । अुसमें मर्यादा नहीं रही । दूसरे आश्रमकी ढालके बिना गृहस्थजीवन पशुजीवन है । अिस जीवनकी मर्यादा मनुष्य और पशुके बीचका अेक बड़ा फ़र्क़ है । वह न रहा तो मेरी रायमें यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गृहस्थजीवनमें पशुजीवनके सिवा और कुछ नहीं रहेगा ।

अिस आश्रमजीवनका फिरसे अुद्धार करनेकी बड़ी भारी कोशिश आश्रममें जारी है । मुझे खुद यह प्रयत्न अैसा ही हास्य-जनक लगता है, जैसे चींटा गुड़से भरे घड़ेको अुठानेकी कोशिश करे। मगर कितना ही हास्यजनक लगे तो भी यह अेक सत्यनिष्ठासे प्रेरित प्रयत्न है । और अिसीलिअे आश्रममें सभीको ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़ता है, आश्रमवासियोंको अुसे मरते दम तक पालना है । अिस दृष्टिसे आश्रममें रहनेवाले सभीको आश्रमवासी नहीं माना जाता । जिसने अुम्रभर ब्रह्मचर्यका पालन करनेका व्रत लिया

है, वही आश्रमवासी माना जाता है। अैसे थोड़े ही हैं। बाक़ी सब आश्रम-विद्यार्थी माने जायँगे। अगर यह प्रयत्न सफल हो, तो शायद अुसमेंसे आश्रमव्यवस्था पैदा हो जाय। मेरा ख़याल है कि अिस प्रयत्नकी सफलताका अन्दाज़ लगानेके लिअे आश्रमकी सोलह सालकी ज़िन्दगी काफ़ी नहीं है। में नहीं जानता यह अन्दाज़ा कब लगाया जा सकेगा। अितना ही कह सकता हूँ कि सोलह वर्षकी कोशिशके बाद मुझे निराशा ज़रा भी नहीं है।

जब आश्रमव्यवस्था अिस तरह बिगड़ गयी है, तब वर्ण-व्यवस्थाकी हालत अिससे कुछ कम खराब नहीं है। मूलमें चार वर्ण थे। अब अनगिनत हैं अथवा अेक ही। यदि जातियोंके बराबर वर्ण मानें, तो जातियाँ अपार हैं। और यदि यह मानें कि जातियोंका वर्णसे कोअी सम्बन्ध ही नहीं है (मेरी रायसे यही मानना भी चाहिये), तो अेक ही वर्ण रहा है, और वह है शूद्र। यहाँ शूद्रका अर्थ दोषसूचक नहीं है, लेकिन वस्तुस्थितिसूचक है। जो वर्ग नौकरी करता है, वह पराधीन है यानी शूद्र है। अभी तो सारा हिन्दुस्तान पराधीन है, अिसलिअे वह शूद्र है। किसान अपनी जमीनका मालिक नहीं, व्यापारी अपने व्यापारका मालिक नहीं। शास्त्रोंमें ब्राह्मण और क्षत्रियोंके जो गुण बतलाये गये हैं, वैसे गुणवाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भाग्यसे ही देखनेको मिलते हैं।

जब वर्ण व्यवस्थाकी खोज हुअी थी, तब मेरे ख़यालमें अूँच-नीचकी भावना नहीं थी। अिस संसारमें न कोअी अूँचा है, न नीचा। अिसलिअे जो अपनेको अूँचा मानता है, वह कभी अूँचा नहीं हो सकता। जो अपनेको नीच मानता है, वह सिर्फ़ अज्ञानके कारणसे। अुसे अुसके नीच होनेका पाठ अुससे अूँचापन भोगनेवालोंने सिखाया है। ब्राह्मणमें ज्ञान हो, तो ज्ञानहीन अुसका आदर

करेंगे ही। जो ब्राह्मण आदरसे अभिमानी बनेगा या अपनेको अूँचा मानेगा, वह अुसी वक्तसे ब्राह्मण नहीं रहेगा। गुणकी पूजा सदा ही होगी। मगर गुणवान आदमीने अपनेको जहाँ अिससे अूँचा माना कि तुरन्त अुसके गुण निकम्मे हो जाते हैं। जिसमें कुछ भी गुण है या शक्ति है, वह अुसका रक्षक है और अुसे अुसका अुपयोग समाजके लिअे करना चाहिये। किसी भी व्यक्तिको अपने लिअे जीनेका हक़ नहीं। कोअी अपनी शक्ति अपने ही लिअे अिस्तेमाल नहीं कर सकता। सब अपनी शक्तिका अुपयोग समाजके लिअे पूरी तरह कर सकते हैं।

अिस कल्पनासे पहले वर्णव्यवस्था हुअी हो या न हुअी हो, आज तो कोअी भी अपनेको अूंचा कहलाकर जीवननिर्वाह नहीं कर सकता। अुसका यह दावा समाज अपनी अिच्छासे नहीं मानेगा। यह हो सकता है कि वह जबरदस्तीसे सिर झुका ले। दुनियामें जो जाग्रति हुअी है, अुसमें स्वेच्छाचार भले ही बहुत आ गया हो, मगर लोकमत अूँचनीचका भेद सहनेको आज तैयार नहीं। दिनदिन अिस भेदका अिन्कार बढ़ता जा रहा है। यह ज्ञान फैलता जाता है कि आत्माके रूपमें सभी बराबर हैं। यह भाव भी अूँचनीचका भाव मिटाता है कि हम सब अेक ही अीश्वरके बनाये हुअे हैं। अिसका यह मतलब नहीं कि चूँकि यह भेद नहीं है या न होना चाहिये, अिसलिअे सबकी शक्ति भी आज बराबर है या होनी चाहिये। अेक दूसरेकी शक्ति अेकसी नहीं, सबकी जायदाद बराबर नहीं, सबको समान अवसर नहीं। फिर भी सब बराबर हैं, अिसीका नाम तो भ्रातृभाव है। भाअी-बहन अलग प्रकृतिके, अलग शक्तिवाले, अलग अुम्रके होते हुअे भी सब समान हैं। यही बात जीवमात्रके बारेमें है।

अिस तरह अगर वर्णव्यवस्था परमार्थके लिअे हो, धार्मिक हो तो अुसमें अूँचनीचपनकी गुंजायश ही नहीं होती।

अिस तरहके अेक दूसरेको समान समझनेवाले चार विभाग वर्णव्यवस्थामें हैं, और वे जन्मसे हैं। कर्मसे वे बदल भले ही जायँ, पर वर्णव्यवस्थाका आधार जन्म न हो, तो अैसा ही लगता है कि फिर अुसका कोअी अर्थ नहीं रह जाता है।

वर्णव्यवस्थामें धर्म और अर्थका संग्रह है। अुसमें पिछले जन्मका और माँबापका असर मान लिया गया है। सभी अेकसी शक्ति और अेकसा रवैया लेकर नहीं पैदा होते। यह भी नहीं हो सकता कि बेशुमार बच्चोंकी शक्तिका माँबाप या हुकूमत अन्दाजा लगा सकें। लेकिन अगर यह खयाल रखकर बच्चेको अपने धन्धेके लिअे तैयार किया जाय कि बच्चेमें अुसके माँबापका, आसपासके वायुमण्डलका, और पिछले संस्कारोंका असर होगा ही, तो किसी किस्मकी परेशानी न हो। निरर्थक प्रयोगोंमें लगनेवाला वक्त बच जाय। नीतिनाशक होड़ न हो, समाजमें सन्तोष रहे और आजीविकाके लिअे कशमकश न हो।

अिस व्यवस्थाके गर्भमें ही अूँचनीचपनका भेद अुठ जाता है। अगर मोचीसे बढ़अी बड़ा और बढ़अीसे वकील डॉक्टर और भी बड़े माने जायँ, तो अपनी मरज़ीसे कोअी मोची या बढ़अी न रहे, बल्कि सब वकील डॉक्टर बननेकी कोशिश करें। और अैसा करनेका अुन्हें अधिकार होना चाहिये और तारीफ़की बात समझी जानी चाहिये। यानी वर्णव्यवस्थाको बुराअी मानकर अुसके नाशकी अिच्छा और कोशिश करनी ठीक है।

यह कहनेमें कि सब अपने अपने पैतृक धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करें यह खयाल भी आ जाता है या होना चाहिये कि

सब धन्धोंका मूल्य गुजरके लायक ही होना चाहिये। अगर मोचीसे बढ़ओकी मजदूरी ज्यादा हो और दोनोंसे वकील डाक्टरकी बहुत ही अधिक हो, तो फिर सभी वकील डाक्टर बननेकी कोशिश करेंगे। आज अैसा होता है। अुससे द्वेष बढ़ा है और वकील डाक्टरोंकी तादाद जितनी चाहिये अुससे ज्यादा हो गयी है। जैसे बढ़अी और मोची वगैराकी जरूरत है वैसे समाजको वकील, डाक्टरकी जरूरत भी हो सकती है। यहाँ ये चार धन्धे अुदाहरणके लिअे और अेकदूसरेके साथ मुकाबला करनेके लिअे दिये गये हैं। यहाँ यह विचार करनेकी जगह नहीं है कि कौनसे धन्धोंकी समाजको ज्यादा जरूरत है या बिलकुल जरूरत नहीं है।

लेकिन वर्णव्यवस्थाको माननेके साथ ही यह भी मान लेना चाहिये कि विद्वत्ता कोअी धन्धा नहीं है और रुपया जमा करनेके लिअे अुसका अुपयोग नहीं होना चाहिये। अिसलिअे वकील डाक्टरके कामको जिस हद तक पेशा माना जाय, अुस हद तक अुससे गुजारे लायक़ ही लेना चाहिये। पहले अैसा ही था। देहाती वैद्य बढ़अीसे ज्यादा नहीं कमाते थे। अुन्हें भी रोजी मिलती थी। मतलब यह कि सब धन्धोंकी क़ीमत बराबर और गुजर लायक़ होनी चाहिये। वर्णकी विशेषता अुसकी संख्याका निश्चय करनेमें नहीं है; अुसकी विशेषता मनुष्यके कर्तव्यका निश्चय करनेमें है। वर्णकी संख्या भले अेक हो या अनेक, शास्त्रकारने तो चार वर्ण ज़रूरी मानकर बताये हैं। सबको बराबरीका दर्जा देनेके बाद अुन्हें चार मानें या अुनकी संख्या बिलकुल अुड़ादें, तो भी बहुत फ़र्क़ नहीं पड़ता।

अिस अर्थको सामने रखकर वर्णका पुनरुद्धार करनेकी कोशिश आश्रम करता है । भले वह समुद्रकी लहरोंको रोकने-जैसी हो । अुसकी जड़में दो बातें मैंने बताअी हैं: अूँचनीचका भाव मिटाना और सबको रोजीका अधिकार देकर सबकी रोजी अेक सरीखी रखना । यह मक़सद पूरा करनेमें जितनी सफलता मिलेगी, अुतना ही समाजको लाभ होगा ।

कोअी कहेगा कि मैं यह हानि कैसे भूल जाता हूँ कि अिस व्यवस्थासे विद्या प्राप्त करनेकी अुमंग कम हो जायगी । विद्याकी अुमंग आज जिस कारणसे होती है, वह अुसे कलंकित करती है और अुस हद तक वह कम हो जाय तो अुसमें भला ही है । विद्या मुक्तिके लिअे यानी सेवाके लिअे है । जिसमें सेवाकी लगन होगी, वह विद्या प्राप्त करनेकी कोशिश करेगा ही । और अुसकी विद्या अुसे और समाजको सुशोभित करेगी । और जब अुसमेंसे रुपया पैदा करनेका लालच दूर हो जायगा, तब विद्याभ्यासका क्रम बदल जायगा और अुसे लेने और देनेका तरीक़ा भी बदल जायगा । अुसका आज खूब दुरुपयोग होता है । अिस नये दृष्टिकोणका आदर हो, तो विद्याका कमसे कम दुरुपयोग हो ।

होड़की गुंजायश फिर भी रहेगी । वह होड़ अच्छा बननेकी, सेवावृत्ति बढ़ानेकी होगी । और सबको गुज़रके लायक़ मिलता रहेगा, तो असन्तोष और अंधाधुन्धी मिट जायगी ।

अिस विचारश्रेणीके अनुसार वर्णका जो गलत अर्थ आज होता है, वह दूर होना चाहिये । छुआछूत मिटनी चाहिये और रोटी-बेटी व्यवहारके साथ वर्णका जो निकट सम्बन्ध आज है, वह टूटना चाहिये । किसके साथ खाया जाय और कौन किसके यहाँ शादी करे, अिसका वर्णके साथ कोअी ताल्लुक नहीं । मनुष्यको

जहाँ खाना होगा, जहाँ अुसे पसन्द होगा, जहाँ अुसे प्रेमसे निमंत्रण मिलेगा, वहाँ वह खायेगा। स्त्रीपुरुषको जहाँ अपना श्रेय दिखेगा, वहाँ वे शादी करेंगे। आम तौरपर विवाह अेक ही वर्णमें होना सम्भव है। मगर दूसरे वर्णमें हो, तो पाप नहीं माना जा सकता। पापका निर्णय दूसरी ही तरह होगा। मनुष्यका बहिष्कार वर्णसे नहीं होगा, समाजसे होगा। समाजका विधान आजसे ज्यादा अच्छा होगा। अुसमें जो गन्दगी, पाखण्ड वगैरा घर कर चुके हैं, वे निकल जायँगे।

खेती

कहना चाहिये कि आश्रममें जो खेती होती है, अुसका कारण मगनलाल है। खेतीके बिना आश्रम दूल्हे बिना बरात जैसा माना जायगा, फिर भी खेतीमें पड़नेकी मेरी हिम्मत बिलकुल न थी। मेरा खयाल था कि अुसके लिअे आश्रम न तो कुशल है, न वैसी परिस्थिति है। खेती बहुत बड़ा साहस है और अुसके लिअे खूब जमीन, रुपया और आदमी चाहियें। अुसपर ध्यान दिया जाता तो दूसरे जो काम जरूरी माने गये थे, जिनको करनेकी हिम्मत थी और जो रुकने-जैसे नहीं थे, अुन्हें धक्का पहुँचनेका भी मुझे डर था। मगर मगनलालके आग्रहके सामने मैं लाचार हो गया। अुन्होंने कहा —"कुछ नहीं तो मेरे मन बहलावके लिअे ही खेती होने दीजिये।" मगनलाल मेरे साथ शायद ही कभी दलील करते थे। मैं जो कहता अुस पर अमल करनेका धर्म अुन्होंने पूरी तरह सीख लिया था। जहाँ अुन्हें सूझ न पड़ता या अुनका मतभेद होता, वहाँ वे मुझे कह देते थे। अितनेपर भी यह मान कर कि मेरे विचारपर चलना ही ठीक होगा, वे अुसमें जुट जाते थे। सच पूछा जाय तो अुनका यह खयाल था कि खेतीके

बिना आश्रम हो ही नहीं सकता। मगर अुसके लिअे अुन्हें बहस करनी पड़ती। वह न करके अुन्होंने प्रेमकी सबसे बड़ी दलील पेश कर दी और खेती शुरू हुअी। आश्रममें जो पेड़ हैं, वे ज्यादातर मगनलालके लगाये हुअे या अुनके लगवाये हुअे हैं। खेतीके बारेमें मेरी शंकायें आज भी बनी हुअी हैं। आज भी मैं यह दावा नहीं करूँगा कि आश्रम खेती करता है। परन्तु जो खेती आश्रममें है, अुसके लिअे मुझे दुःख नहीं। अुसमें रुपया काफ़ी खर्च हुआ है। हिसाबसे यह नहीं बताया जा सकता कि वह अब भी स्वावलम्बी हो गयी है। अितनेपर भी मैं देखता हूँ कि जितनी खेती होती है, अुतनी खेतीकी आश्रमकी हस्तीके लिअे जरूरत थी ही। खेतीके बिना आश्रम बन ही नहीं सकता। आश्रमको अपनी सागभाजी तो पैदा करनी ही चाहिये। मगनलालने अपने लिअे तो पिछले वर्षोंमें व्रत ही ले लिया था कि आश्रममें जो सागतरकारी मिलेगी, अुसीपर गुजर करूँगा। आश्रममें अपने लायक अनाज और घास भी पैदा करनेकी शक्ति होनी चाहिये। खेतीके सुधारका लोभ भले न रहे, मगर मैं देख सकता हूँ कि खेतीके बिना आश्रम वैसा ही लगेगा, जैसा नाकके बिना शरीर।

यह खेती अभी तो प्रयोगके रूपमें ही है। यह दावा नहीं किया जा सकता कि अुससे किसीको बहुत शिक्षा दी जा सकती है। मगर अुसका अुपयोग खेतीकी साधारण जानकारी हासिल करनेके लिअे काफी होता है। आश्रमकी जमीनपर जहाँ अेक भी पेड़ नहीं था, वहाँ अब बहुत पेड़ हो गये हैं। और हर पेड़ अुपयोगकी दृष्टिसे लगाया गया है। सागभाजी होती है, थोड़े फल होते हैं, घासचारा होता है। जैसा मैं पहले बता चुका हूँ, मनुष्यके मैलेको खादके काममें लिया जाता है, और यह कहा जा सकता है कि अिसका नतीजा बहुत अच्छा हुआ है।

खेती करनेमें पुराने और नये हलोंका प्रयोग किया गया है। पानी खींचनेके लिअे वे ही योजनाअें काममें ली गयीं, जो गाँवोंमें पनप सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि खासकर पुराने औजारोंकी तरफ झुकाव रहा है। गरीब किसानके लिअे ये औजार आदर्श मालूम हुअे हैं। यह दूसरी बात है कि अुन्हींमें थोड़ा फेरबदल किया जा सकता है। मगर अिस बारेमें निश्चयपूर्वक कहने लायक परिणाम अभी तक नहीं लाया जा सका। क्योंकि अुसे मुख्य काम समझकर अुसके लिअे जितना चाहिये अुतना समय और बुद्धिका अुपयोग नहीं किया गया। आश्रम अिस काममें नेतृत्व नहीं कर सकता।

गोसेवा

आश्रमका आदर्श तो दूधके बिना गुजर करना है। जैसे आश्रमका खयाल है कि मांस मनुष्यकी खुराक नहीं, वैसे ही पशुओंके दूधकी बात है। अेक साल तक बहुत आग्रहके साथ आश्रममें दूध घी छोड़ा गया, मगर बादमें यह प्रयोग बन्द करना पड़ा। आश्रममें परवरिश पानेवाले बच्चोंके शरीर कमजोर होने लगे। वे बड़े किन्तु दुर्बल होने लगे। अिसलिअे धीरेधीरे घी और बादमें दूध शुरू हो गया। अिनके शुरू होते ही यह निश्चय स्वाभाविक था कि पशुओंके रखे बिना काम नहीं चलेगा।

आश्रम 'गोरक्षा' धर्मको मानता है। 'गोरक्षा' शब्दमें अभिमान और आडम्बर है। अिन्सान जानवरका रक्षक नहीं बन सकता। जो खुद रक्षा चाहता है, वह दूसरेकी रक्षा नहीं कर सकता। जीव मात्रका रक्षक अेक परमेश्वर ही है। अैसा खयाल होनेके कारण आश्रमने 'गोरक्षा'के बजाय 'गोसेवा' शब्दका प्रयोग

पसन्द किया। लेकिन चूँकि खुद दूध घी छोड़कर गोसेवा सिर्फ परमार्थकी दृष्टिसे करनेकी आश्रमकी अिच्छा सफल न हुअी, अिसलिअे ढोर पाले गये। शुरू शुरूमें यह स्पष्ट नहीं था कि सिर्फ गाय बैल ही रखना धर्म है। अिसलिअे गाय, बैल और भैंसें रखी गयीं।

पर दिन दिन यह साफ़ होता गया कि आजकल तो गो-सेवा करनेसे ही मनुष्यके सिवा दूसरे सब प्राणियोंकी सेवा हो जाती है। गोसेवा अिन्सानके लिअे रास्ता बतानेवाली है। अिससे आगे जानेके अुसके पास साधन नहीं। अिसके सिवा गोवध ही हिन्दू-मुसलमानोंमें झगड़ेका अेक कारण बन जाता है। आश्रमका खयाल है कि मुसलमानसे गाय जबरन् छीन लेनेका हिन्दूको अधिकार नहीं, यह अुसका धर्म नहीं। दूसरेपर ज़बरदस्ती करके अुससे गाय छुड़ानेमें गोसेवा या गोरक्षा नहीं, बल्कि अिससे अुसकी हत्या जल्दी होना सम्भव है। खुद गायके प्रति अपना धर्म पालन करके गायको महँगी बनाकर ही हिन्दू गायकी और अुसकी सन्तानकी सेवा या रक्षा कर सकता है। यह काम आजकल हिन्दू समाजने छोड़ दिया है। गायकी ज़रूरत कम ही होती है। गायसे भैंस ज्यादा दूध देती है, अुसमें घी ज्यादा होता है, अुसे रखनेमें खर्च थोड़ा होता है। फिर भैंसकी औलाद अगर पाड़ा हो, तो बहुतोंको यह चिन्ता नहीं रहती या बहुत कम चिन्ता रहती है कि अुसका क्या हाल है; क्योंकि भैंसकी रक्षा या सेवा करना अुनका धर्म ही नहीं। अिस तरहका ओछा हिसाब लगाकर हिन्दू समाजने कायरतासे, अज्ञानसे और स्वार्थसे गायकी अुपेक्षा की है और भैंसको जगह दी है, और अैसा करके दोनोंका बुरा किया है। भैंसके पालनेमें भैंसका स्वार्थ भी नहीं सधता। भैंसका भला

अुसके स्वतंत्र रहनेमें है। भैंस पालनेका अर्थ है पाड़ेको दुःख दे देकर मारना। यह बात सब प्रान्तोंपर लागू नहीं होती, लेकिन गुजरातमें पाड़ेका अुपयोग खेतीमें नहीं होता, अिसलिअे अुसके नसीबमें बुरी मौत मरना ही होता है।

अिस विचारसे आश्रममेंसे भैंसको निकाल दिया गया और सिर्फ़ गाय बैल पालनेका ही आग्रह रखा गया है। गायकी नस्ल सुधारना, अलग अलग खुराक देकर दूध बढ़ाने और सुधारनेकी खोज करना, दूधकी रक्षा करनेकी कला सीखना, अुसमेंसे आसानीसे मक्खन निकालना, बैलोंको कमसे कम कष्ट देकर खस्सी करना — वगैरा बातोंपर ध्यान दिया जाता है। अभी सब कुछ प्रयोगके तौरपर होता है। मगर आश्रमका खयाल अैसा है कि गायका पूरा और दयामय अुपयोग हो, तो गाय महँगी पड़ ही नहीं सकती।

आज शायद बहुतोंको पता न हो कि गाय महँगी पड़ती है। वह महँगी पड़ती है, अिसलिअे अुसकी हत्या होगी ही। अिन्सान अितना परोपकारी नहीं होता कि खुद मरकर गायको बचाये, यानी गायको अपने आपको खा जाने दे। आजके हिसाबसे पशुओंकी संख्या अितनी है कि अुन्हें अच्छी तरह पालें, तो मनुष्यको अपने लिअे काफी खुराक न मिले। यह बात सही नहीं है, यह साबित करनेके लिअे यह बताना चाहिये कि गाय बैलको ज्यादा अच्छी तरह पालनेसे अुनकी अुत्पादक शक्ति बढ़ सकती है। आश्रमकी राय है कि यह बताया जा सकता है।

लेकिन यह बात साबित करनेके लिअे हिन्दू समाजमें धर्मके नामसे जो वहम घुस गये हैं, अुन्हें मिटाना चाहिये। हिन्दू समाज गायकी हड्डियों, अँतड़ियों वगैराको काममें नहीं लेता। गायका

मरनेके बाद क्या होता है, अिसकी परवाह नहीं की जाती। चमारके पेशेको पवित्र माननेके बजाय गन्दा माना जाता है। दूसरे जानवरोंकी हड्डियाँ काममें ली जायँगी, मगर गायकी नहीं। और ली भी जायँगी तो वे हिन्दू समाजकी तैयार की हुअी नहीं होंगी। गाय अस्थिपिंजर होकर आस्ट्रेलिया जाकर कत्ल हो, वहाँसे अुसकी हड्डीकी खाद बनकर यहाँ आये, उसके जूते वगैरा बन कर आयें, तो अुन सबका अुपयोग किया जायगा! अुसके मांसका अर्क दवाके तौरपर आयेगा, तो अुसे भी खाया जायगा!

अैसा करनेमें गायकी बर्बादीहै, रुपयेकी बर्बादी है और धर्मके नामपर लूट होती है। अिसलिअे आश्रममें बड़ी कोशिशसे चमारका धन्धा शुरू किया गया है। अुसमें अभी तक कोअी होशियार नहीं हो सके हैं। बाहरसे कोअी अैसा चमार नहीं मिला, जो शिक्षा पाया हुआ हो और आश्रमके नियमोंका पालन कर सके। अेक था, जिसे हम रख न सके। मामूली चमारोंको बसानेकी कोशिश भी पार नहीं पड़ी। फिर भी चमारका काम आश्रमका अंग बना हुआ है। और चरखेकी तरह अिस कलापर भी काबू पाकर अुसका प्रचार करनेकी आशा आश्रम रखता है। क्योंकि मरी हुअी गायके सारे अंगोंका अुपयोग किया जायगा, तभी गायका भाररूप होना बन्द होगा। अुससे नफा तो कभी होगा ही नहीं। धर्म अर्थका विरोधी कभी नहीं है, नफेका विरोधी हमेशा है। लेकिन गायसे खर्च निकलवाना हो, तो आज जिस ढंगसे अुसकी लाशका दुरुपयोग होता है या जिस तरह वह बेपारियोंका बेपार बढ़ानेके काम आती है, वह बन्द होना चाहिये। लेकिन हिन्दू समाज गायको अपने पास रखे, जीतेजी अुसे और अुसकी संतानको अच्छी तरह पाले, बुढ़ापेमें अुसे रखे और मरनेपर अुसकी लाशका पूरा अुपयोग करे.

तो ही गाय बचे और अुसकी रक्षासे जीवमात्रकी रक्षा करना शायद हम सीखें। आज तो हमारे अज्ञान, आलस्य और द्वेषके कारण गायकी बर्बादी दिन दिन बढ़ती जा रही है। फिर दूसरे मवेशियोंकी तो बात ही क्या?

आश्रमका खयाल यह है कि जितनी गोशालाअें और पिंजरापोल हैं, अुनका धार्मिक और शास्त्रीय अुपयोग हो, धनवान लोग अपने यहाँ गोशाला रखें और गायके दूध घीका ही आग्रह रखें, और धनी लोग गायके दूधका बेपार निषिद्ध मानकर सार्वजनिक गोशालाअें अिस तरह चलायें कि अुनका आमदखर्च बराबर रहे, तो जल्दी ही गायकी रक्षा हो सकती है।

आश्रमका अभी तो अुद्देश्य छोटा ही है यानी आश्रममें आदर्श गोशाला चलाना, गाय बैलका विकास करना, मरनेपर अुनके हर अंगका अुपयोग करके यह साबित करना कि अुनका खर्च सिरपर नहीं पड़ता, गोशाला चलाते हुअे गोसेवक तैयार करना और तैयार होनेपर अुन्हें ठिकाने लगाना। यह काम हो रहा है। रुकावटें बहुत आती हैं, मगर सफलता मिलनेका पूरा भरोसा है।

शिक्षा

यहाँ शिक्षा शब्द विशेष और साधारण दोनों अर्थोंमें अिस्तेमाल किया गया है। अिस शिक्षाके प्रयोगमें आश्रमकी जितनी परीक्षा हुअी है, अुतनी और किसी प्रयोगमें नहीं हुअी।

आश्रम क़ायम होते ही देख लिया कि आश्रममें रहनेवाले स्त्री-बच्चोंको पढ़ाना लिखाना धर्म है। और आगे चलकर तो यह भी देखा कि जो अपढ़ पुरुष भी आश्रममें आते हैं, अुनके लिअे

भी बन्दोबस्त होना चाहिये। जो लोग आश्रममें थे, अुनसे शिक्षाका काम पूरा न हो सकेगा, यह भी साफ मालूम हो गया। शिक्षा दे सकनेवाले लोगोंको खींच लेनेकी जरा भी आशा रखनी हो, तो शिक्षक वर्गके लिअे ब्रह्मचर्यका नियम कड़ा नहीं रखा जा सकता। अिस खयालसे आश्रमके दो भाग हो गये: अेक शिक्षक विभाग और दूसरा आश्रम विभाग। मकान भी अलग अलग बनाये गये।

मनुष्य जाति अपना स्वभाव अेकाअेक कैसे छोड़े? बहुत कोशिश करनेपर भी ये विभाग होते ही अूँचनीचकी भावनाका जहर फैलने लगा। 'आश्रम विभाग' वालोंमें घमण्ड पैदा हुआ। शिक्षक विभाग अिसे कैसे सहता? यह अभिमान आश्रमके अुद्देश्यके विरुद्ध था, अिसलिअे असत्य भी था। अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य जरूरी था, तो विभाग भी स्वाभाविक था। मगर पूर्ण ब्रह्मचर्यकी छापवालोंमें बड़प्पन माननेके लिअे तो कोअी कारण ही नहीं था। यह भी तो हो सकता है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालनेका दावा करनेवालोंका मनसे यानी विचारोंमें रोज पतन होता हो और ब्रह्मचर्यका दावा न करनेवाले मगर अुसे पसन्द करनेवाले रोज अपने प्रयत्नमें अूँचे अुठते हों। बुद्धि यह सब समझती थी, मगर अुसपर अमल करना सबके लिअे कठिन हो गया था।

गड़बड़का अेक कारण तो यह था ही। दूसरा और पैदा हो गया। शिक्षाके तरीकेपर मतभेद हो गया और अुससे आश्रमकी व्यवस्थामें मुश्किलें आने लगीं। बहुत बहसें हुअीं, बड़े झगड़े हुअे, जहर पैदा हुआ, दिल खट्टे हो गये। अितना होने पर भी अन्तमें सब शान्त हो गये, या हो सकता है अेक दूसरेको बर्दाश्त करने लगे। अिसमें मुझे आश्रमके मूल हेतुकी यानी सत्यकी

जीत मालूम हुअी । मतभेदवालोंके मनमें मैल नहीं था । कोअी गंदी तिकड़ममें नहीं पड़ते थे । जो भेद होते थे, अुनके लिअे दुःख होता था । जो सच है, अुसीपर चलनेकी अिच्छा थी । अपनी अपनी रायके आग्रहसे सामनेवालेकी दलीलें समझनेमें रुकावट होती थी, अिसलिअे अुद्वेग होता था । अिसमें अिस बातकी परीक्षा हुअी कि आश्रमवासियोंमें अेक दूसरेके लिअे कितनी अुदारता रहती है ।

अिस बारेमें आश्रममें खूब चर्चा हुअी कि तालीम किस किस्मकी और कितने समय तक दी जाय । अब भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि आखिरी फैसलेपर पहुँच गये हैं । अिस विषयमें मेरे अपने विचार अलग ही हैं । मैं नहीं कह सकता कि अिस मामलेमें मैं अपने सब साथियोंको अपने साथ ले जा सका हूँ । अिसलिअे कुछ भी निश्चयके साथ आश्रमका आदर्श बताना मुश्किल है । मेरा खयाल अिस तरहका है :

१. लड़कों और लड़कियोंको अेक साथ शिक्षा देनी चाहिये । यह बचपन आठ साल तक माना जाय ।

२. अुनका समय मुख्यतः शारीरिक काममें लगना चाहिये और यह काम भी शिक्षककी देखरेखमें होना चाहिये । शारीरिक कामको शिक्षाका अंग माना जाय ।

३. हर लड़के और लड़कीकी रुचि पहचानकर अुसे काम सौंपना चाहिये ।

४. हरअेक काम लेते वक्त अुसके कारणकी जानकारी करानी चाहिये ।

५. लड़का या लड़की समझने लगे तभीसे अुसे साधारण ज्ञान देना चाहिये । अुसका यह ज्ञान पढ़ाअी लिखाअीसे पहले शुरू होना चाहिये ।

६. अक्षरज्ञानको सुन्दर लेखन कलाका अंग समझकर पहले बच्चेको भूमितिकी आकृतियाँ खींचना सिखाया जाय, और अुसकी अँगुलियाँ मुड़ने लगें, तब अुसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाय; यानी अुसे शुरूसे ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाया जाय।

७. लिखनेसे पहले बच्चा पढ़ना सीखे। यानी अक्षरोंको चित्र समझकर अुन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र खींचे।

८. अिस ढंगसे जो बच्चा सीखेगा और मुँहसे ज्ञान पायेगा, वह आठ वर्षके भीतर अपनी ताकतके अनुसार बहुत ज्ञान पा लेगा।

९. बालकोंको जबरदस्ती कुछ न सिखाया जाय।

१०. वे जो पढ़ें अुसमें अुन्हें रस आना ही चाहिये।

११. बच्चोंको पढ़ाअी खेल-जैसी लगनी चाहिये। खेल भी शिक्षाका जरूरी अंग है।

१२. बच्चोंकी सारी शिक्षा मातृभाषाके जरिये होनी चाहिये।

१३. बच्चोंको हिन्दी अुर्दूका ज्ञान राष्ट्रभाषाके तौरपर दिया जाय। अुसकी शुरूआत लिखाअी पढ़ाअीसे पहले होनी चाहिये।

१४. धार्मिक शिक्षा जरूरी मानी जाय। वह पुस्तकसे नहीं, शिक्षकके बर्तावसे और अुसीके मुँहसे मिलनी चाहिये।

१५. नौसे सोलह वर्षका दूसरा काल है।

१६. दूसरे कालमें भी जहाँ तक सम्भव हो लड़के लड़कियोंकी शिक्षा साथसाथ हो तो अच्छा है।

१७. दूसरे कालमें हिन्दू बालकको संस्कृतका ज्ञान मिलना चाहिये और मुसलमानको अरबीका।

१८. अिस कालमें भी शारीरिक काम तो होगा ही। पढ़ाअी-लिखाअीका समय जरूरतके मुताबिक बढ़ाना चाहिये।

१९. अिस कालमें माँबापका धन्धा अगर निश्चित हुआ जान पड़े, तो बालकको वह सिखाया जाय, और अुसे अिस तरह तैयार किया जाय कि वह बापदादाके पेशेसे गुजर करना पसन्द करे। यह नियम लड़कीपर लागू नहीं होता।

२०. सोलह वर्षतक लड़के लड़कियोंको दुनियाके अितिहास, भूगोलका, और वनस्पति शास्त्र, ज्योतिष, गणित, भूमिति और बीजगणितका साधारण ज्ञान हो जाना चाहिये।

२१. सोलह सालके लड़के लड़कीको सीनापिरोना और रसोअी बनाना आ जाना चाहिये।

२२. सोलहसे पच्चीस साल तक मैं तीसरा काल मानता हूँ। अिस कालमें हरअेक युवक और युवतीको अुसकी अिच्छा और हालतके अनुसार शिक्षा मिले।

२३. नौ बरसके बादसे होनेवाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। यानी विद्यार्थी पढ़ते वक्त अैसे अुद्योगमें लगे, जिससे पाठशालाका खर्च निकले।

२४. स्कूलमें आमदनी तो शुरूसे ही होने लगे। मगर शुरूके सालोंमें खर्चके बराबर आमदनी न होगी।

१०–७–'३२

२५. शिक्षकोंके वेतन बड़े नहीं हो सकते, लेकिन गुजर लायक जरूर हों। अुनमें सेवावृत्ति होनी चाहिये। प्रारम्भिक शिक्षाके लिअे हर किसी शिक्षकसे काम चलानेका रिवाज बुरा है। सभी शिक्षक चरित्रवान होने चाहियें।

२६. शिक्षाके लिअे बड़े और खर्चीले मकानोंकी जरूरत नहीं।

२७. अंग्रेजीकी पढ़ाअी भाषाके रूपमें ही हो सकती है और अुसे पाठ्यक्रममें जगह मिलनी चाहिये। जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है,

वैसे ही अंग्रेजीका अुपयोग दूसरे राष्ट्रोंके साथ व्यवहार और व्यापारके लिअे है।

अिसमें साधारण शिक्षाके बारेमें ज्यादातर मेरे विचार आ जाते हैं। स्त्रियोंकी विशेष शिक्षा कैसी और कहाँसे शुरू हो, अिस बारेमें मैं खुद निश्चय नहीं कर सका हूँ। अितनी राय पक्की है कि जितनी सहूलियत पुरुषको मिलती है, अुतनी ही स्त्रीको मिलनी चाहिये; और खास सुविधाकी जरूरत हो, वहाँ खास सुविधा भी मिलनी चाहिये।

प्रौढ़ अुमर वाले निरक्षर स्त्रीपुरुषोंके लिअे रात्रिवर्गोंकी जरूरत है ही। लेकिन मेरा खयाल अैसा नहीं है कि अुन्हें अक्षरज्ञान होना ही चाहिये। अुनके लिअे व्याख्यानों वगैराके जरिये साधारण ज्ञान मिलनेकी सुविधा होनी चाहिये, और जिन्हें पढ़ना लिखना सीखनेकी अिच्छा हो, अुनके लिअे पूरी सहूलियत होनी चाहिये।

अूपरके वाक्योंसे मेरा कहनेका मतलब यह नहीं कि अिस भारी दिशामें मेरे और साथियोंके बीच मतभेद है। लेकिन चूँकि कुछ बातोंमें सूक्ष्म मतभेद है, अिसलिअे मैंने अूपरके विचार अपने कहकर रखे हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि आश्रममें आज तक जितने प्रयोग हमने किये हैं, अुनपरसे हम दृढ़ निश्चयोंपर पहुँच सके हैं। अेक विषयपर हम सब अेकमत हैं और वह यह कि शिक्षामें अुद्योगको और खासकर कताअीको बड़ा स्थान मिलना चाहिये। शिक्षा ज्यादातर स्वावलम्बी होनी चाहिये और देहाती-जीवनको ताकत पहुँचानेवाली और अुस जीवनके साथ सम्बन्ध रखनेवाली होनी चाहिये।

मेरा खयाल यह है कि शिक्षाके प्रयोगोंमें आश्रमको ज्यादासे ज्यादा सफलता स्त्रियोंके बारेमें मिली है। वह अिस तरह कि

जो स्वतंत्रता और आत्मविश्वास आश्रमकी स्त्रियोंमें आया है, वह अुतने ही अरसेमें और अुसी वर्गकी स्त्रियोंमें कहीं दूसरी जगह देखनेमें नहीं आया। अिसका कारण आश्रमका वातावरण है। आश्रममें स्त्रीपर अैसा कोअी अंकुश नहीं रखा गया, जो पुरुषपर न रखा गया हो। स्त्रियोंके मनमें बराबरीका विचार शुरूसे ही ठूँस दिया जाता है। कामोंमें सबको बराबर भाग लेना पड़ता है। अैसा फर्क नहीं, रखा गया कि फलां काम स्त्री का ही है और पुरुष अुसे करे ही नहीं। रसोअीके काममें स्त्रीपुरुष दोनोंने भाग लिया है और लेते हैं। शरीरकी जो मेहनत स्त्री कर ही नहीं सकती, अुससे अुसे मुक्त रखा जाता है। अिसके सिवा अेक भी अैसा अुद्योग नहीं, जिसमें स्त्रीपुरुष साथ साथ काम न करते हों। पर्दा और घूँघट-जैसी चीज आश्रममें है ही नहीं। अिस तरह आश्रमका वातावरण अैसा बन गया है कि स्त्री कहींसे भी आयी हो, अुसे आश्रममें आते ही अलग तरहका और स्वतंत्र वातावरण महसूस होता है और वह अपनेको निर्भय मानने लगती है। मेरा विश्वास है कि अिसमें ब्रह्मचर्य व्रतका बहुत बड़ा हाथ रहा है। बड़ी अुम्रकी लड़कियाँ कुँवारी हैं। आश्रममें रहनेवाले हम सब जानते हैं कि आश्रमका यह प्रयोग जोखमोंसे भरा हुआ है। लेकिन अिस तरहके जोखम अुठाये बिना स्त्रियोंकी अुन्नति और अुनकी जाग्रति असम्भव-सी दीखती है।

जिस तरह अछूतपन मिटानेकी जरूरत है, अुसी तरह स्त्रियोंके बारेमें कुछ वहम, खयाल और रिवाज भी दूर करनेकी आवश्यकता है। बालविवाह, हर लड़कीके लिअे ब्याह करनेका माना जानेवाला धर्म, मासिक धर्म शुरू होनेसे पहले शादी करनेकी मानी जानेवाली जरूरत, विधवाका पुनर्विवाह न करने की समाजकी तरफकी

पाबन्दी वगैरा रिवाज जब तक बन्द न होंगे, तब तक स्त्री जाति आगे नहीं बढ़ सकती। अिस खयालसे आश्रम स्त्रियोंको आते ही यह सिखाने लगता है कि अूपरके रिवाज बुरे हैं, धर्म विरुद्ध हैं। वे अिस शिक्षापर अमल होते देखती हैं, अिसलिअे अुनके दिलको चोट नहीं पहुँचती और अुन्हें अैसा नहीं लगता कि ये सब बातें पुस्तकमें बने हुअे बैंगनकी-सी हैं, जो सिर्फ देखने भर की चीज़ हो, जिससे होने जानेवाला कुछ न हो।

जिसे हम आम तौरपर शिक्षा मानते हैं, वह आश्रममें थोड़ी ही देखी जाती है। अितनेपर भी मेरी राय यह है कि बच्चेसे बूढ़े तक स्त्रीपुरुषोंमें शिक्षाकी लगन पैदा हुअी है, ज्ञान प्राप्त करनेकी अिच्छा बढ़ती जा रही है और अिसके लिअे वक्त न मिलनेकी शिकायत भी रहती है। मुझे यह शुभ चिन्ह मालूम होता है। आश्रममें आनेवाले शिक्षामें रस लेनेवाले या शिक्षा पाये हुअे नहीं होते। बहुतोंको तो सिर्फ लिखनापढ़ना ही आता है। बाहर तो अिससे आगे बढ़नेका हौसला तक न था। आश्रममें थोड़ा समय बीतनेपर अक्षरज्ञान बढ़ानेकी अुमंग पैदा होती है। जो संस्था अितना कर सकती है, अुसका रास्ता आसान हो जाता है; क्योंकि पहली सीढ़ी अक्सर सीखनेकी अुत्कण्ठा पैदा करना ही है। आश्रममें आनेवालेमें यह तुरन्त पैदा होती है। आश्रम अिस अुत्कण्ठाको पूरा करनेके लिअे जितनी चाहिये अुतनी सहूलियत दे नहीं सका, अिसका मुझे बहुत दुःख नहीं है। आश्रममें लगी हुअी पाबन्दियोंके कारण शायद यथेष्ट संख्यामें अैसे आदमी कभी नहीं आयँगे, जो शिक्षाका काम कर सकें। अिसलिअे आश्रममें ही अिस कामके लिअे जो तैयार हो सकते हैं, अुनसे सन्तोष मानना पड़ता है। लेकिन यह बात भी नहीं कि आश्रमके कामोंके

कारण अैसे शिक्षक तैयार न हो सकें या तैयार होनेमें बहुत वक्त लगे। अैसा हो तो भी जिनमें ज्ञान प्राप्त करनेकी सच्ची लगन पैदा हो चुकी है, वे बादमें भी प्राप्त करेंगे। शिक्षाके लिअे समयकी मर्यादा ही नहीं। सच्ची शिक्षा तो स्कूल छोड़नेके बाद शुरू होती है। जिसने अुसका महत्त्व समझा है, वह सदा ही विद्यार्थी है। अपना कर्तव्यपालन करते हुअे और अुसके पालनके लिअे मनुष्यके ज्ञानमें रोज बढ़ती होनी ही चाहिये। जो सब काम समझकर करना है, अुसका ज्ञान रोज बढ़ना ही चाहिये। और यह बात आश्रममें अच्छी तरह समझ ली गयी है।

शिक्षाकी प्रगतिमें अेक चीज रुकावट डालती है। यह वहम कि शिक्षकके बिना शिक्षा ली ही नहीं जा सकती, समाजकी बुद्धिको रोक रहा है। मनुष्यका सच्चा शिक्षक वह खुद ही है। आजकल तो अपने आप शिक्षा प्राप्त करनेके साधन खूब हो गये हैं। बहुतसी बातोंका ज्ञान लगनसे हरअेकको मिल सकता है और जहाँ शिक्षककी ही जरूरत होती है, वहाँ वह खुद ढूँढ़ लेता है। अनुभव बड़ेसे बड़ा स्कूल है। कअी धन्धे अैसे हैं, जो स्कूलमें नहीं सीखे जाते, बल्कि अुन धन्धोंकी दुकानोंपर या कारखानोंमें सीखे जाते हैं। स्कूली ज्ञान अक्सर तोतेका-सा होता है। अिसलिअे बड़ी अुम्रवालोंके लिअे स्कूलके बजाय अिच्छाकी, लगनकी और आत्म-विश्वासकी जरूरत है।

बच्चोंकी शिक्षा माँ-बापका धर्म है। अैसा सोचें तो हमें बेशुमार पाठशालाओंकी अपेक्षा सच्ची शिक्षाका वायुमण्डल पैदा करनेकी ज्यादा जरूरत है। वह पैदा हुआ, फिर तो जहाँ पाठशाला चाहिये, वहाँ वह जरूर खड़ी हो जायगी।

आश्रमकी शिक्षा अिस दृष्टिसे होती है, और अिस दृष्टिसे सोचनेपर सफलता भी अेक हद तक अच्छी मिली है। आश्रमका हर विभाग अेक स्कूल है।

सत्याग्रह

11-7-'32

आश्रमके अलग अलग कामोंका हाल ज्यादातर बताया जा चुका है। आश्रमकी हस्ती सत्यके आग्रहके जरिये सत्यकी खोज करनेके लिअे है। और अैसा आग्रह रखते हुअे जब सत्याग्रहका हथियार अिस्तेमाल करना पड़ता है, तब आश्रम अुसका प्रयोग करता है, और अिस सत्याग्रहके नियमों और मर्यादाओंकी खोज करता है। यह चर्चा भी हो चुकी कि मामूली तौरपर नियम कैसे होने चाहियें।

मगर सत्याग्रहकी मर्यादा क्या है? अिस शास्त्रका तीव्र अुपयोग कब किया जा सकता है? जब मनुष्य हमेशा सत्यपर डटा रहता है, तो अुसका नाम भी सत्याग्रह है। यहाँ अिस सत्याग्रहकी चर्चा नहीं है; चर्चा अुस सत्याग्रहकी है, जिसे वह हथियारके रूपमें दूसरेके प्रति अिस्तेमाल करता है।

अैसा सत्याग्रह साथियोंके विरुद्ध, सम्बन्धियोंके विरुद्ध, समाजके विरुद्ध, राज्यके विरुद्ध और दुनियाके विरुद्ध हो सकता है। अिसकी जड़में

[यह अितिहास अिसके आगे नहीं लिखा जा सका]

परिशिष्ट

[आश्रमकी नियमावलीमेंसे नीचेका हिस्सा दिया जाता है। अुसमें खयाल यही है कि वह व्रतनियमोंके पालनेवालेके कामका साबित होगा।]

१. सत्य

सत्यका मतलब अितना ही नहीं कि रोजके व्यवहारमें असत्य न बोलना या असत्य आचरण नहीं करना। लेकिन सत्य ही परमेश्वर है और अुसके सिवा दूसरा कुछ नहीं। अिस सत्यकी खोज और पूजाके लिअे ही दूसरे सब नियमोंकी जरूरत रहती है और अुसीमेंसे वे पैदा होते हैं। ये सत्यके पुजारी अपने माने हुअे देशहितके लिअे भी कभी असत्य न बोलें, या अुसका आचरण न करें। सत्यके लिअे वे प्रह्लादकी तरह अपने मातपिता और बुजुर्गोंकी आज्ञा भी विनयपूर्वक भंग करनेमें अपना धर्म समझें।

२. अहिंसा

अिस व्रतको पालनेके लिअे अितना ही काफी नहीं कि प्राणियोंकी हत्या न की जाय। अहिंसाका अर्थ है छोटे छोटे जन्तुओंसे लेकर मनुष्य तक सब जीवोंको अेक नजरसे देखना। अिस व्रतका पालनेवाला घोर अन्यायीपर भी क्रोध न करे, लेकिन अुसपर प्रेम रखे, अुसका भला ही चाहे और करे। लेकिन प्रेम करते हुअे भी अुस अन्यायीके अन्यायसे दबे नहीं, बल्कि अुसका सामना करे और अैसा करनेमें वह अुसे जो भी तकलीफें दे, अुन्हें बड़े धीरजके साथ और अुससे द्वेष किये बिना सहे।

३. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यके पालनके बिना अूपरके व्रतोंका पालन नहीं हो सकता। अिसके लिअे सिर्फ अितना ही काफी नहीं है कि ब्रह्मचारी किसी स्त्री या पुरुषको बुरी नजरसे न देखे। लेकिन वह मनसे भी विषयोंका चिन्तन या भोग न करे। यदि वह विवाहित हो तो अपनी पत्नी या अपने पतिके साथ भी विषय भोग न करे, लेकिन अुसे अपना मित्र समझकर अुससे निर्मल सम्बन्ध रखे। अपनी पत्नी हो या दूसरी स्त्री हो, अपना पति हो या दूसरा पुरुष हो किसीके भी विकारमय स्पर्श, या वैसी बातचीत या फिर कोअी वैसी ही चेष्टासे भी स्थूल ब्रह्मचर्य टूटता है। यह विकारमय चेष्टा यदि पुरुष पुरुषके बीच ही हो या स्त्री स्त्रीके बीच ही हो या दोनोंकी किसी चीज़के लिअे हो, तो भी स्थूल ब्रह्मचर्यका भंग होता है।

४. अस्वाद

जब तक मनुष्य जीभको वशमें न कर ले, तब तक ब्रह्मचर्यका पालन अुसके लिअे बड़ा कठिन है, अैसा अनुभव होनेसे अस्वाद अेक अलग व्रत माना गया है। भोजन सिर्फ शरीरको जिन्दा रखनेके लिअे करना चाहिये, अुसका आनन्द लेनेके लिअे नहीं। अिसका मतलब यह कि अुसे दवाअी समझकर संयमके साथ खाना ज़रूरी है। अिस व्रतके पालनेवालेको विकार पैदा करनेवाले पदार्थ जैसे मसाले वगैराका त्याग करना चाहिये। मांस, शराब, तम्बाखू, भाँग अित्यादि चीजोंके अिस्तेमालपर आश्रममें मनाही है। अिस व्रतमें स्वादके लिअे दावत करने या भोजनका आग्रह करनेकी भी मनाही है।

५. अस्तेय

अिस व्रतके लिअे अितना ही काफी नहीं है कि दूसरेकी चीज़ अुसकी बगैर अिजाजतके न ली जाय। जो चीज़ जिस कामके लिअे मिली हो, अुसके सिवा अुसे दूसरे काममें लेना, या जितने समयके लिअे मिली हो, अुससे ज्यादा समय तक अुसे काममें लेना भी चोरी है। अिस व्रतकी बुनियादमें तो यह सत्य है कि परमात्मा प्राणियोंके लिअे नित्यकी ज़रूरतकी चीज़ें ही हमेशा पैदा करता है और देता है। अुससे ज्यादा वह बिलकुल पैदा नहीं करता। अिसलिअे अपनी कमसे कम ज़रूरतके अलावा मनुष्य जो कुछ भी लेता है, वह चोरी ही है।

६. अपरिग्रह

अपरिग्रह अस्तेयमें आ जाता है। जैसे गैरज़रूरी चीज ली नहीं जा सकती, वैसे अुसका संग्रह भी नहीं किया जा सकता। अिसका मतलब यह है कि जिस अन्न या फर्निचरकी ज़रूरत न हो, अुसका संग्रह करना अिस व्रतका भंग करना है। जिसका कुर्सीके बगैर काम चल सकता है, अुसे कुर्सी रखनी ही न चाहिये। अपरिग्रहीको अपना जीवन हमेशा सादा बनाते रहना चाहिये।

७. खुदमेहनत

अस्तेय और अपरिग्रहके पालनके लिअे खुदमेहनतका नियम ज़रूरी है। फिर, सब मनुष्य जब अपनी जीविका अपनी मेहनतसे चलायें, तब ही वे समाजद्रोह और खुदके द्रोहसे बच सकते हैं। जिनका शरीर काम करता है और जो समझदार हो गये हैं, अैसे स्त्री पुरुषोंको अपना रोजका हो सकने जैसा काम खुद कर लेना चाहिये और दूसरेकी सेवा बिना कारण न लेनी चाहिये। लेकिन बच्चोंकी, दूसरे अपंगोंकी और बूढ़े स्त्री-पुरुषोंकी सेवाका

मौका आये, तो अुस वक्त सेवा करना हरअेक सामाजिक जिम्मेदारी समझनेवाले मनुष्यका धर्म है।

अिस आदर्शके आधारपर आश्रममें जब मजदूरोंके बिना काम चल ही न सकता हो तभी वे रखे जाते हैं। और अुनके साथ मालिक नौकरका सम्बन्ध नहीं रखा जाता।

८. स्वदेशी

मनुष्य सबसे बलवान प्राणी है। अिसलिअे जब वह अपने पड़ोसीकी सेवा करता है, तब जगतकी सेवा करता है। अिस भावनाका नाम स्वदेशी है। जो अपने पासकी सेवा छोड़कर दूरकी सेवा करनेके लिअे दौड़ता है, वह स्वदेशीका भंग करता है। अिस भावनाको मजबूत बनाया जाय, तो संसार सुव्यवस्थित बन सकता है। जब अिसे तोड़ा जाता है, तो अव्यवस्था पैदा होती है। अिस नियमके अनुसार जहाँ तक हमसे बन सके हमें अपने पड़ोसकी दुकानसे व्यवहार करना चाहिये। जो चीज अपने देशमें बनती हो या आसानीसे बन सकती हो, वह हमें परदेशसे नहीं मँगानी चाहिये। स्वदेशीमें स्वार्थका स्थान नहीं है। खुदको कुटुम्बके लिअे, कुटुम्बको शहरके लिअे, शहरको देशके लिअे तथा देशको जगतके कल्याणके लिअे कुर्बान हो जाना चाहिये।

९. अभय

सत्य, अहिंसा आदि व्रतोंका पालन निर्भयताके बिना नहीं हो सकता। आज चूँकि सब दूर भय समाया हुआ है, अिसलिअे निर्भयताका चिन्तन करना और अुसकी तालीम देना बहुत ज़रूरी है, और अिसीलिअे अुसे व्रतोंमें जगह दी गयी है। जो सत्यपरायण रहना चाहते हैं, वे न जातपाँतसे डरें, न सरकारसे डरें, न चोरसे डरें, न गरीबीसे डरें, न मौतसे डरें

१०. अस्पृश्यता निवारण

हिन्दू धर्ममें छूतछातने जड़ पकड़ ली है। छूतछातमें धर्म नहीं बल्कि अधर्म है, यह समझकर अुसे मिटानेके कामको नियमोंमें शुमार किया गया है। अछूत माने जानेवालोंके लिअे आश्रममें दूसरी जातियोंके बराबर ही स्थान है।

आश्रम जातपाँत नहीं मानता। अुसका खयाल है कि जात-पाँतसे हिन्दू धर्मको नुकसान हुआ है। अुसमें रहनेवाली छुआछूत और अूँचनीचकी भावना अहिंसा धर्मको नुकसान पहुँचानेवाली है। आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है। लेकिन यह मालूम होता है कि वह वर्णव्यवस्था सिर्फ धन्धेके सम्बन्धमें है, यानी जो वर्णनीतिको पालता है, अुसे अपने माँबापके धन्धेमेंसे रोजी पैदा करके बाकीका समय ज्ञान प्राप्त करने और अुसे बढ़ानेमें खर्च करना चाहिये। स्मृतियोंमें मानी हुअी वर्णव्यवस्था जगतका भला करनेवाली है। लेकिन वर्णाश्रम धर्म मान्य होनेपर भी आश्रमका जीवन तो गीताके माने हुअे व्यापक और भावना प्रधान संन्यास धर्मके आदर्शपर रचा हुआ है। अिसलिअे अुसमें वर्णकी गुंजायश नहीं है।

११. सहिष्णुता

आश्रमकी यह मान्यता है कि संसारमें जितने भी चालू और मशहूर धर्म हैं, वे सब सत्यको जाहिर करते हैं। लेकिन चूँकि वे सब अपूर्ण मनुष्य द्वारा व्यक्त हुअे हैं, अिसलिअे अुन सबमें असत्यका भी मिश्रण हो गया है। अिसका मतलब यह कि हममें जितना अपने धर्मके लिअे मान हो, अुतना ही मान दूसरोंके धर्मोंके लिअे भी होना चाहिये। जहाँ अैसी सहिष्णुता हो, वहाँ न अेक दूसरेके धर्मका विरोध पैदा होता है, न दूसरे धर्मवालेको अपने धर्ममें लानेकी कोशिश की जाती है। लेकिन यह प्रार्थना की जाती है कि जो जो दोष सब धर्मोंमें हों, वे सब दूर हों। और अिस भावनाको हमेशा मजबूत करना जरूरी है।

टिप्पणी

१. (पृ० ३) गांधीजी दक्षिण अफ्रीकामें अेक बार नैटाल जा रहे थे। अुस वक्त अुनके मित्र पोलकने गाड़ीमें वक्त गुजारनेके लिअे अुन्हें अेक अंग्रेज लेखक जान रस्किनका 'अण्टु दिस लास्ट' पढ़नेको दिया। पढ़ते ही वे विचार गांधीजीको अितने रुचे कि अुन्होंने अुनके अनुसार जीवन बना लेनेका निश्चय कर लिया। अिस परसे फिनिक्सकी स्थापना हुअी और अुनके जीवनमें परिवर्तन हुआ। बादमें गांधीजीने 'अिण्डियन ओपिनियन'में **सर्वोदयके** नामसे अिस पुस्तकका सार प्रकाशित किया। अब यह पुस्तकके रूपमें भी प्रकाशित हो चुका है।

२. (पृ० ४) देखिये आत्मकथा: भाग ४: प्रकरण १९, पृ० ३४९।

३. (पृ० ४) हरमान कॅलनबॅक जर्मन यहूदी थे और दक्षिण अफ्रीकामें मकान वगैरा बँधवानेवाले अिन्जिनियर थे। खुद अकेले होनेपर भी मकान किरायेके अलावा रु० १२०० हर मास खर्च करते थे। जब गांधीजीके साथ अिनकी मित्रता हुअी, तो अुन्हें सादगीका शौक लगा। और अुन्होंने खर्चको १२०० रु०से घटाकर १२० रु० कर दिया। वे गांधीजीको हर तरहके प्रयोगोंमें साथ देते थे। वे अुनके अेक कीमती साथी बनकर रहे थे। अेक बार जेल भी हो आये थे। गांधीजीके हिन्दुस्तानमें आनेके बाद ये हिन्दुस्तान भी आनेवाले थे। लेकिन पहला विश्वयुद्ध शुरू हो गया और चूँकि वे जर्मन थे अिसलिअे अुन्हें युद्धकैदी बना लिया गया। अिस तरह वे हिन्दुस्तान नहीं आ सके। बादमें अभी अभी वे १९३७ में हिन्दुस्तान आये थे।

अुस वक्त **हरिजनबन्धु**में महादेवभाअीने अिनका परिचय देते हुअे जो लेख लिखे थे, अुनमेंसे नीचेका प्रसंग दिया जाता है। अिस परसे गांधीजी और अुनके सम्बन्धका कुछ अन्दाजा हो सकेगा :—

"अिन साथियोंके रोजमर्राके जीवनमें जो घटनायें हुअीं, अुन्हें याद करते हुअे कॅलनबॅक कहने लगे: 'कितनी ही बार अिन्होंने मुझे रुलाया भी है।'

"मैंने अुन्हें मोटर और दूरबीनवाली घटनाओंकी याद दिलाअी। अिनका जो हूबहू वर्णन अुन्होंने किया, वह गांधीजीकी **आत्मकथा**में हमें देखनेको नहीं मिलता। अुसमें अुनका अुल्लेख तो किया गया है, लेकिन जैसा हूबहू चित्र दिया जाना चाहिये था, वैसा नहीं दिया गया। कॅलनबॅक कहने लगे : 'गांधीजी जिस दिन जेलसे छूटनेवाले थे, अुस दिन अुन्हें घर लानेके लिअे मैंने अेक मोटर खरीदी। ये अुसमें बैठे तो सही, लेकिन अिन्हें जो वेदना हो रही थी, वह मैं अिनके मुँह परसे ताड़ गया। अुस वक्त तो ये मन मारे रहे, लेकिन घर पहुँचे कि अिन्होंने मुझे अपनी मूर्खताके लिअे आड़े हाथों लिया। कहने लगे: 'मोटरको दियासलाअी दिखाओ।' मैंने कहा : 'दियासलाअी कैसे दिखाअी जाय भला? मैं अितना मालदार नहीं कि नयी मोटरको दियासलाअी दिखाना बरदाश्त कर लूँ।' बड़ी बहस हुअी। बादमें अिन्होंने मोटरको दियासलाअी दिखानेके बदले बेंच डालनेकी बात मंजूर कर ली। मोटर सालेक भर मोटरघरमें पड़ी रही और फिर मैंने बेंच दी। लेकिन अिस घटनाका परिणाम यह हुआ कि मैंने अिसके बाद ग्यारह वर्ष तक मोटर नहीं ली।

'मैं जीमनेके वक्तका रूमाल लटकानेके लिअे चाँदीके छल्ले ले आया करता था। अैसी छोटी छोटी बातोंके लिअे भी अिन्हें पूछना मुझे न सूझता था। अिन छल्लोंको वे कचरेमें फेंक देते और

दुःखसे बोलते : ' क्या अभी भी तुम मुझे नहीं समझ सकते ? '
लेकिन अिन छोटी छोटी बातोंसे अिन्हें जो दुःख होता था, अुसे में समझ सकता था। वे मुझसे प्रेम करते थे और अिसी कारण औरोंके बजाय मेरेसे विशेष सख्तीसे पेश आते थे। यह अुनके प्रेमका जुल्म था। लेकिन मुझे यह प्रेम मिला, अिसे मैं अपनी खुशकिस्मती समझता हूँ।"

(हरिजनबन्धु, ३०-५-'३७)

४. (पृ० ११) **आत्मकथा** : भाग ५, प्रकरण १०, पृ० ४६४, प्र० २१, पृ० ५००।

५. (पृ० १८) अुद्योग मन्दिरका भाग लिखा नहीं गया।

६. (पृ० २८) चौदह दिनका क्रम भी पीछेसे बदल गया। **गीता पदार्थ कोषकी** भूमिकामें गांधीजीने अिस बारेमें अिस तरह लिखा है : " . . . रोज अेक श्लोक, फिर दो, फिर पाँच, फिर रोज अेक अध्याय, फिर चौदह दिनोंमें पारायण और अन्तमें कुछ बरसोंसे हममेंसे कुछ सात दिनमें पारायण करने तक पहुँचे हैं। और अुन अुन दिनोंमें अुन अुन अध्यायोंकी ध्वनि सबेरे ४-३०के आसपास सुनाअी पड़ती है। कुछ लोगोंने — बहुत थोड़ोंने — अठारहों अध्याय जबानी भी कर लिये हैं। दिनोंके हिसाबसे सबेरेकी प्रार्थनाका यह सिलसिला है :

शुक्र १, २; शनि ३, ४, ५; रवि ६, ७, ८; सोम ९, १०, ११, १२; मंगल १३, १४, १५; बुध १६, १७; गुरु १८।

" अिन विभागोंके लिअे अितना ही कहना काफी है कि अिनके पीछे अेक विचारश्रेणी है। अिस तरह मनन करनेमें बड़ी सुविधा रहती है, यह अनुभवमें आया है।

“ शुक्रवारसे प्रार्थना क्यों शुरू हुअी, यह प्रश्न पैदा होना सम्भव है। अिसका कारण अितना ही है कि काफी समय लेकर पारायण चौदह दिनोंमें होता था। यरवदा जेलमें मुझे सात दिनमें पारायण करनेका विचार आया और अुसपर अेक शुक्रवारको अमल हुआ। अिसलिअे और तबसे पारायण-सप्ताह शुक्रवारसे शुरू होता है।”

“ पारायणकी बात यहाँ दो कारणोंसे कही गयी है। अेक तो यह बतलाना कि गीताभक्ति हममेंसे कितनोंको कहाँ तक ले गयी है; और दूसरा, पढ़नेवालेको अभ्यासके लिअे अुत्साह बढ़ानेका रास्ता बतलाना।” (२४-९-’३६)

७. (पृ० ४०) यह भाग भी लिखा नहीं गया।

८. (पृ० ५८) ‘आत्मकथा’ भाग ५, प्रकरण ४०, पृ० ५६९।